वाम-मार्ग

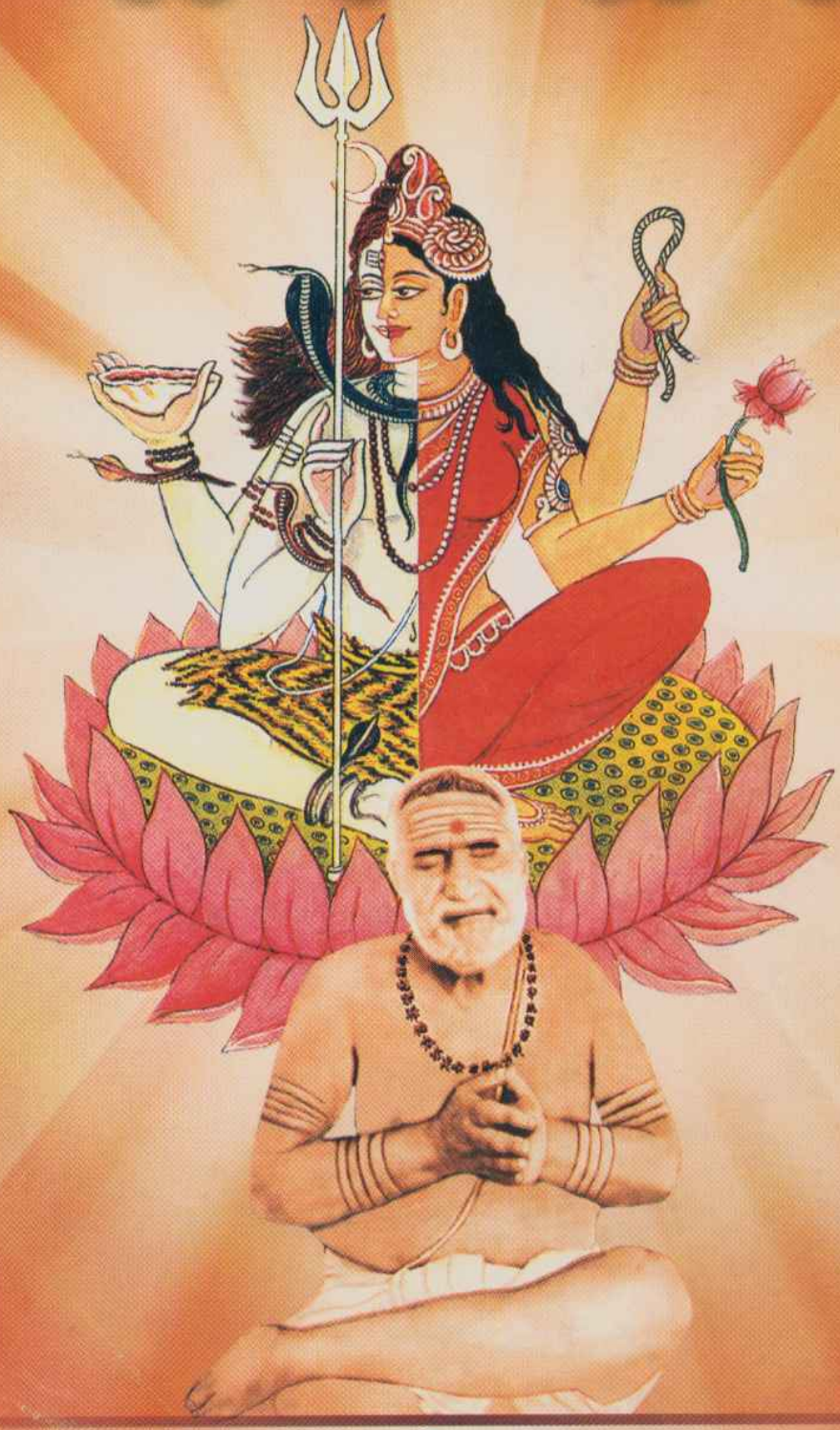

लेखक
'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

'कौल-कल्पतरु' चण्डी की विशेष प्रस्तुति

वाम-मार्ग

विषय-प्रवेश ● स्वरूप-निरूपण

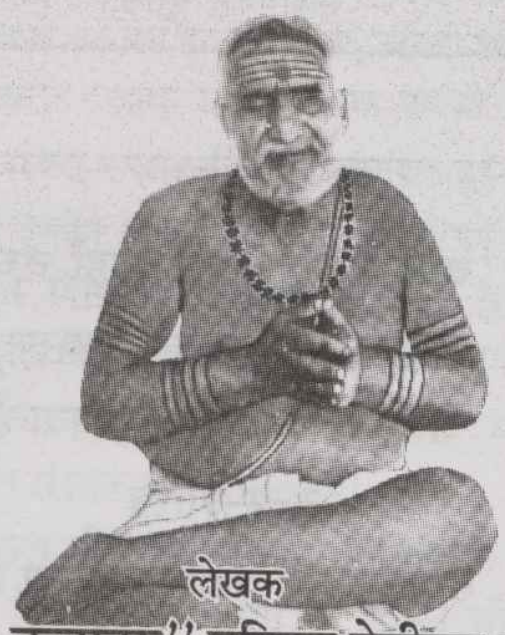

लेखक

''कौल-कल्पतरु'' पण्डित देवीदत्त शुक्ल

आदि-सम्पादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल

सम्पादक

ऋतशील शर्मा

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

२०८

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

दूरभाष (०५३२)२५०२७८३

सर्वाधिकार सुरक्षित

जिस '**वाम-मार्ग**' की हम यहाँ चर्चा करेंगे,
उसका महत्त्व-पूर्ण विवरण
'**तन्त्र-शास्त्र**' में दिया गया है।
'**तन्त्र-शास्त्र**'
सनातन-धर्म का विश्व-कोश है।
उसमें **सनातन-धर्म** की
सभी साधनाओं की विधियाँ अङ्कित हैं।

-'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी

छठवाँ संस्करण:

श्रीगीता-जयन्ती, 'क्रोधी' सं० २०६८ वि०

(०६ दिसम्बर, २०११)

मुद्रक :

परा-वाणी प्रेस

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

प्रकाशकीय

'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी ने शाक्त-धर्म के वास्तविक स्वरूप के उद्‌घाटन करने के जिस महत्-कार्य का श्रीगणेश आज से ७० वर्ष पूर्व किया था, उसकी प्रथम परिणति के रूप में प्रस्तुत 'वाम-मार्ग' नामक उनकी यह पुस्तक पहले-पहल संवत् १९९८ वि० में प्रकाशित हुई थी। लेखक के स्थान पर उन्होंने अपना नाम न देकर अपने ज्येष्ठ भ्राता स्व० पण्डित शिवाधार सुकुल के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित वंशीधर सुकुल वैद्यराज तन्त्र-शास्त्री का नाम दिया था। पण्डित वंशीधर सुकुल वैद्यराज के नाम से 'वाम-मार्ग' पुस्तक के तीन संस्करण प्रकाशित हुए।

पूज्य शुक्ल जी की पञ्चम पुण्य-तिथि के अवसर पर 'वाम-मार्ग' के चौथे संस्करण को शुक्ल जी के नाम-सहित प्रकाशित किया गया और उनकी पुण्य-स्मृति में हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई।

'वाम-मार्ग' का पाँचवाँ संस्करण पितृ-पक्ष, 'विकृत' सं० २०५४ वि० (१७ सितम्बर, १९९७) को आदि-सम्पादक 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल के द्वारा प्रकाशित हुआ।

अब 'वाम-मार्ग' का छठवाँ संस्करण नए रूप में प्रस्तुत हो रहा है। आशा है, 'तन्त्र'-प्रेमी बन्धुओं को इसके द्वारा विशेष सहायता प्राप्त होगी।

श्रीगीता-जयन्ती, -ऋतशील शर्मा
'क्रोधी' सं० २०६८ वि०
०६ दिसम्बर, २०११

अनुक्रम

१. प्रकाशकीय ३

२. भूमिका ५

३. विषय-प्रवेश ७

'तन्त्र-शास्त्र' का महत्त्व और उसकी प्राचीनता

'तन्त्र-शास्त्र' की धर्म-भावना

४. स्वरूप-निरूपण ३३

महा-निर्वाण तन्त्र,

मुण्ड-माला तन्त्र,

कुलार्णव तन्त्र,

समयाचार तन्त्र,

कामाख्या तन्त्र,

माया तन्त्र,

रुद्र-यामल तन्त्र के उद्धरण

भूमिका

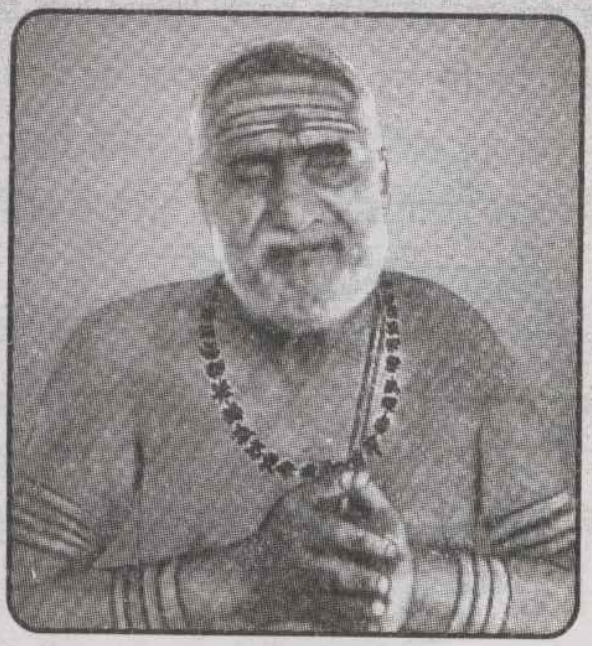

'**वाम-मार्ग**' पर हिन्दी में एक भी पुस्तक नहीं है। जो साधक संस्कृत नहीं जानते, उनको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यह पुस्तक उसी कठिनाई को दूर करने के विचार से लिखी गई है।

यह पुस्तक तीन प्रकरणों में विभक्त है। '**विषय प्रवेश**' नाम के पहले प्रकरण में '**तन्त्र-शास्त्र**' के गौरव का वर्णन किया गया है और यह बतलाया गया है कि '**वाम-मार्ग**' उस शास्त्र की एक प्रधान साधना है। इस प्रकरण के विवेचन को ध्यान-पूर्वक पढ़ने से साधक अपने धर्म के महत्त्व को हृदयङ्गम कर सकेगा। यह प्रकरण **परम शाक्त पण्डित शिवचन्द्र भट्टाचार्य विद्यार्णव** के '**तन्त्र-तत्त्व**' नामक ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है।

'**स्वरूप-निरूपण**' नाम के दूसरे प्रकरण में भिन्न-भिन्न **तन्त्रों** की कुछ '**श्रुतियाँ**' सङ्कलित की गई हैं। इनका सङ्कलन इस क्रम से किया गया है कि साधक को आगमोक्त '**कुल-धर्म**' के प्रामाणिक रूप का थोड़े में ज्ञान हो जाए। इस प्रकरण का मनन करके साधक यह जान सकेगा कि उसके मार्ग की क्यों उत्पत्ति हुई, उसकी साधना का क्या ध्येय है, उसे अपनी साधना पर क्यों दृढ़ रहना चाहिए तथा उसके लिए क्या विधेय है और क्या निषिद्ध है। इन श्रुतियों का नित्य पाठ करने से **धर्म-भाव** में वृद्धि होगी और साधना में दृढ़ता आएगी।

तीसरे प्रकरण '**साधना-क्रम**' में साधक के '**नित्यार्चन**' का संक्षेप के साथ वर्णन किया गया है। इस प्रकरण का सङ्कलन '**महा-निर्वाण तन्त्र**' के आधार पर किया गया है। इसके कुछ अंश अन्य **तन्त्रों** से भी लिए गए हैं। यह दो भागों विभक्त है। **पूर्वार्द्ध** में '**नित्यार्चन**' का वर्णन किया गया है और इस ढङ्ग से किया गया है कि किसी भी '**विद्या**' का उपासक अपने देवता का '**नित्यार्चन**' इसकी पद्धति के अनुसार कर सकेगा। उसे केवल '**इष्ट-देवता**' का **मूल-मन्त्र** और उसके मुख्य-मुख्य **न्यासों** का यथा-स्थान समावेश भर करना पड़ेगा। ऐसे स्थलों का निर्देश कर दिया गया है। यही नहीं, जहाँ-जहाँ '**कुल-भेद**' है, वह भी यथा-स्थान उल्लेख कर दिया गया है।

इसके उत्तरार्द्ध में '**नित्यार्चन**' से सम्बन्ध रखनेवाले मुख्य आवश्यक विषयों का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार हमने इस पुस्तक को **शाक्त-साधकों** के लिए उपयोगी बनाने का यथा-शक्ति पूरा प्रयत्न किया है। हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को संग्रह कर वे प्रसन्न होंगे। साथ ही उन्हें अपने **साधना-मार्ग** में अग्रसर होने में पर्याप्त सहायता भी मिलेगी।

-देवीदत्त शुक्ल
प्रयाग

।।आद्यायै नमः।।

विषय-प्रवेश

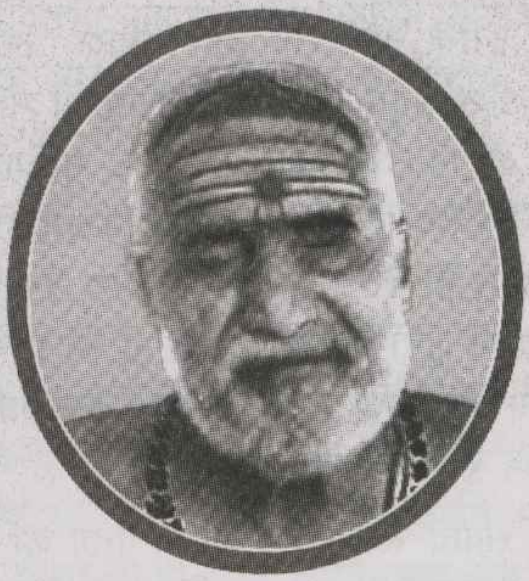

'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी

'तन्त्र-शास्त्र' का महत्त्व और 'तन्त्र-शास्त्र' की प्राचीनता

◈ जिस **'वाम-मार्ग'** की हम यहाँ चर्चा करेंगे, उसका महत्त्व-पूर्ण विवरण **'तन्त्र-शास्त्र'** में दिया गया है।

◈ **'तन्त्र-शास्त्र'** सनातन-धर्म का **'विश्व-कोश'** है। उसमें सनातन-धर्म की सभी साधनाओं की विधियाँ अङ्कित हैं।

◈ **'तन्त्र-शास्त्र'** मुख्यतः **'आगम'** और **'निगम'** की दो श्रेणियों में विभक्त है। इसके अतिरिक्त बहु-संख्यक **'तन्त्र-ग्रन्थ'** डामर, यामल, उड्डीश आदि नामों की श्रेणियों में भी विभक्त हैं और **'उप-तन्त्रों'** की भी उसी प्रकार एक बड़ी संख्या है। मतलब यह कि **'तन्त्रों'** एवं तद्-विषयक ग्रन्थों का अलग ही एक बहुत बड़ा साहित्य-भण्डार है, परन्तु इसके अधिकांश ग्रन्थ समय़ के उलटे प्रवाह के कारण लुप्त हो गए हैं। तो भी जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे वर्तमान धर्म-ग्लानि के काल में भी **'तन्त्र-शास्त्र'** का गौरव अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए पर्याप्त हैं।

◈ **'तन्त्र-ग्रन्थ'** संवाद-रूप में हैं। जिनमें वक्ता का स्थान **'शिव'** ने और श्रोता का **'पार्वती'** ने ग्रहण किया है, वे **'आगम'** कहलाते हैं।और जिनमें वक्ता का स्थान **'पार्वती'** ने और श्रोता का **'शिव'** ने ग्रहण किया है, वे **'निगम'** कहलाते हैं। **डामरों, यामलों** आदि के वक्ता अकेले **'शिव'** हैं और **'उप-तन्त्र'** तपोधन ऋषियों की रचनाएँ हैं।

◈ तन्त्र-धर्मानुयायी **'आगम-निगम'** और **'डामर-यामल'** की श्रेणी के ग्रन्थों को **'ईश-वाक्य'** मानते हैं और **'वेदों के समान'** उन्हें पूज्य समझते हैं। इन पूज्य ग्रन्थों में युग-विशेष के धर्म का उपदेश किया गया है।

◈ **'महा-निर्वाण तन्त्र'** में लिखा है–

'कलि-दोष' के कारण **'द्विज'** लोग पवित्र-अपवित्र का विचार नहीं करेंगे। अतएव वे **'वैदिक'** कृत्यों-द्वारा **'मुक्ति-लाभ'** करने में समर्थ नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में **'स्मृतियाँ'** और **'संहिताएँ'**

मनुष्य-जाति को कल्याण की ओर नहीं ले जा सकेंगी।
हे प्रिये! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि **'कलि-काल'** में **'आगम-सम्मत' धर्म** को छोड़कर दूसरा मार्ग ही नहीं है।
अब **'वैदिक मन्त्र'** निर्विष सर्प के सदृश **'शक्ति-हीन'** हो गए हैं। जो व्यक्ति **'कलि-काल'** में दूसरे धर्म-ग्रन्थों के अनुसार अपना उद्देश्य सिद्ध करना चाहता है, वह मूर्ख है! प्यास से पीड़ित होकर वह गङ्गा की बालू में कुआँ खोदना चाहता है! इस युग में **'तन्त्रोक्त मन्त्र'** ही शीघ्र फल-प्रद हैं।

◈ अज्ञान-वश एवं अन्य कारणों से साधारण आस्तिक भारतीय **'तन्त्र-शास्त्र'** के महत्त्व को नहीं स्वीकार करते। यही नहीं, कोई-कोई तो उनका विरोध तथा निन्दा तक करते हैं, परन्तु उनका ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि आस्तिक भारतीय तो किसी-न-किसी **'देवता'** का उपासक होता ही है। यदि वह **'शैव, वैष्णव'** या **'शाक्त'** आदि है, तो उसने अपने **'इष्ट-देव'** के मन्त्र की **दीक्षा** ली ही होगी, अपने **'इष्ट-देव'** की यथा-शक्ति **'षोडशोपचार'** से पूजा करता ही होगा। ऐसी दशा में वह **'तन्त्र-शास्त्र'** की कैसे उपेक्षा कर सकता है?

◈ प्रत्येक आस्तिक भारतीय **'तन्त्र-शास्त्र'** के अनुसार ही अपने धर्म की साधना करता है और ऐसी स्थिति में उसके द्वारा **'तन्त्र-शास्त्र'** का विरोध होना, उसके अज्ञान का सूचक होता है।

◈ वस्तुतः **'तन्त्र-शास्त्र'** सार्वजनिक और सार्वदेशिक शास्त्र है। उसमें **'शैवों, वैष्णवों, शाक्तों'** आदि सभी भिन्न-भिन्न 'सम्प्रदायों' की भिन्न-भिन्न **'उपासना-विधियों'** का वर्णन है और यह **'अपौरुषेय'** शास्त्र सम्पूर्ण **'आस्तिक'** भारतीय-समाज पर आज अपना विशिष्ट प्रभाव डाले हुए है।

◈ **'वाम-मार्ग'**—तन्त्र-शास्त्र का एक **'आचार'** है। नहीं-नहीं, वह उसका एक महत्त्व-पूर्ण अङ्ग है क्योंकि वह उस शास्त्र में

'उपासना की सिद्धि' का केन्द्र माना गया है, परन्तु **'आगम ग्रन्थों'** के उपलब्ध न होने और उनके सर्व-साधारण की पहुँच के बाहर हो जाने से लोग उनमें प्रतिपादित **'वाम-मार्ग'** के कारण उनके सम्बन्ध में कुछ-का-कुछ समझ बैठे हैं।

- **'आस्तिक'** भारतीयों को इस बात की खबर ही नहीं है कि वे जिस धर्म के अनुयायी हैं, उसकी रचना **तन्त्र-शास्त्र** अर्थात् **'आगम-शास्त्र'** के पुनीत सिद्धान्तों के आधार पर ही हुई है।
- भूत-काल में **'अहिंसा'**-वादी **'जैनों'** और **'बौद्धों'** के प्रबल पड़ जाने पर **'वेदों'** के साथ-साथ **तन्त्रों** की भी उपेक्षा दिन-दिन बढ़ती गई। इस प्रकार स्वयं भारतीय ही **'वेद'** के साथ-साथ अपने इस युग-विशेष के **'वेद'** अर्थात् **'तन्त्र-शास्त्र'** की भी उपेक्षा के कारण हैं।
- **'तान्त्रिक धर्म'** वास्तव में **'वैदिक' कर्म-काण्ड** का एक विकसित तथा समयोपयोगी रूप है। **'पञ्च-तत्त्वों'** द्वारा जो **'उपासना-क्रम'** इसमें विहित माना गया है और जिसकी **'वाम-मार्ग'** के नाम से चर्चा की जाती है, वह **'वैदिक कर्म-काण्ड'** के अनुकूल है, परन्तु विरोधियों ने उसकी एक इसी बात को आगे करके लोगों के मन में भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसी से लोग **'तन्त्र'** का नाम सुनते ही चौंक पड़ते हैं, यद्यपि वे, यदि ध्यान दें, तो अपनी **'चार'** धार्मिक क्रियाओं में तीन **'तान्त्रिक'** ही पाएँगे क्योंकि **बौद्ध-धर्म** के पराभव के बाद विराट् **'सनातन-धर्म'** का जो विकास हुआ है, वह किसी भी अंश में **'वैदिक'** नहीं है। उस पर **'तन्त्र-शास्त्र'** की पूरी छाप लगी हुई है।
- **महा-भारत-युद्ध** के बाद से **बौद्ध-धर्म** के प्रारम्भ होने के पहले तक अर्थात् कोई दो हजार वर्ष तक भारतवर्ष में **'तन्त्र-धर्म'** का ही प्राबल्य रहा।

- **'तन्त्र-ग्रन्थों'** के वचनों से प्रकट होता है कि किसी समय भारत तीन क्रान्तों में विभक्त था। ये तीनों **'विष्णु-क्रान्त'**, **'रथ-क्रान्त'** और **'अश्व-क्रान्त'** के नाम से प्रसिद्ध थे। मोटे हिसाब से पूर्वोत्तरी भाग **'विष्णु-क्रान्त'**, पश्चिमोत्तरी **'रथ-क्रान्त'** और अवशिष्ट तथा दक्षिणी भाग **'अश्व-क्रान्त'** था। इन क्रान्तों की सीमा में आज के ईरान, अफगानिस्तान, तिब्बत, ब्रह्म-देश, जावा आदि देश आ जाते हैं। इस प्रकार समस्त पूर्वी और दक्षिणी एशिया में **'तान्त्रिक साधना'** का बहुत अधिक प्रचार था। इस भौगोलिक देश-विभाजन का केन्द्र **'विन्ध्याचल'** का पूर्वी सिरा या **'करतोया नदी'** माना गया था।
- **'तन्त्र-शास्त्र'** का महत्त्व केवल उसके अध्ययन से ही नहीं जाना जा सकता। उसका वास्तविक ज्ञान तो उसमें बताई गई **साधना** को करके तथा उसमें निहित भावनाओं को हृदयङ्गम करके ही प्राप्त किया जा सकता है।
- **'तन्त्र-ग्रन्थ'** सामान्य ग्रन्थ नहीं है और न वे किसी सम्प्रदाय-विशेष के ही ग्रन्थ हैं। **'ब्रह्मोपासना'** से लेकर **क्षुद्र-देवोपासना** तक की **'साधना-विधि'** उनमें बताई गई है। **'हठ-योग'** से लेकर **'नाम-स्तव'** तक की उनमें व्यवस्था दी गई है।
- **'तन्त्र-शास्त्र'** में **आदि-शक्ति, सृष्टि, प्रलय, देवताओं की उत्पत्ति, उनकी पूजा-विधि, भूतों का वर्गीकरण, खगोल, लोकों, नरकों और स्त्रियों का वर्णन, युग-धर्म, आश्रम-धर्म, संस्कार, देव-मूर्ति-प्रतिष्ठा, मन्त्र-यन्त्र, मुद्रा-क्रिया, साधना-क्रम, अन्तर् और बहिर् उपासना-विधि, गृह, वापी और कूप की प्रतिष्ठा, वृक्षारोपण, तीर्थ-कथन, पुरश्चरण-विधि, जप-विधि, व्रत, षट्-कर्म, उत्सव, ध्यान-योग, राज-धर्म, धर्म-शास्त्र, औषधि-क्रिया, साधारण विज्ञान** आदि नाना प्रकार के विषयों का समावेश है। अतएव **'तन्त्र-शास्त्र'** सार्वदेशिक शास्त्र है। उसका उपदेश मनुष्य-मात्र के कल्याण के लिए किया गया है।

◈ ऐसे महत्त्व-पूर्ण **'तन्त्र-शास्त्र'** द्वारा प्रतिपादित **'वाम-मार्ग'** का कोई डेढ़ हजार वर्ष से इस पुण्य भूमि में निषेध हो रहा है। इस निन्दा के कारण हमारे वे धर्माचार्य हैं, जिन्होंने समय-समय पर इस धर्म-प्राण देश में अपने नए-नए पन्थ चलाए हैं। **'तान्त्रिक धर्म'** का प्राधान्य नष्ट कर अपने पन्थ का महत्त्व सिद्ध करने के लिए उन लोगों ने **'वाम-मार्ग'** को ही आगे लाकर उसकी निन्दा की। फल यह हुआ कि **'वाम-मार्ग'** एक प्रकार का पाप-काण्ड समझा जाने लगा! अतएव उसका प्रतिपादन करनेवाले अपौरुषेय **'तन्त्र-ग्रन्थ'** भी लोगों की दृष्टि में गिर गए!

◈ **'वाम-मार्ग'** के सम्बन्ध में **'कौआ कान ले गया!'** वाली कहावत ही चरितार्थ होती दिखाई देती है। उद्देश्य-विशेष से कुछ लोगों द्वारा की गई उसकी निन्दा यथार्थ समझ ली गई और किसी ने यह देखने का कभी प्रयत्न नहीं किया कि निन्दकों के कथन में कितना सत्यांश है! इस भेड़िया-धसान में **'तन्त्र-धर्म'** के प्रति लोगों में श्रद्धा ही नहीं रह गई! वही लोग, जो अधिक दृढ़ थे और जिनको **'तान्त्रिक धर्म'** का ज्ञान था, परम्परा से इस ईश्वरीय धर्म को ग्रहण किए रहे और आज भी अपने श्रद्धा-भाव से इस पुण्य भूमि में उसका अस्तित्व बराबर बनाए हुए हैं।

◈ **'तन्त्र-धर्म'** आज का धर्म नहीं है। यह भारत का **'सनातन धर्म'** है। **'श्रीमद्-भागवत'** (स्कन्ध ३, अध्याय ४) में **शिव** और **दक्ष** के वैर की जो कथा लिखी है, उससे उस प्राचीन-तम काल में भी इस धर्म के अस्तित्व का पता लगता है। **'शिव'** को शाप देते हुए **'भृगु'** ने जिस **'शिव-दीक्षा'** का उल्लेख किया है, वह **'तान्त्रिक वाम-मार्ग'** पर घटित है। इसके सिवा **'वैदिक ग्रन्थों'** में भी इसका यथा-स्थान बराबर उल्लेख हुआ है।

◈ **'वेद'** अनेक शाखाओं में विभक्त हैं। अतएव उनके उतने ही **'उपनिषद्'** भी हैं। **'अथर्व-वेद'** के भी अनेक **'उपनिषद्'** हैं।

उसके उपनिषदों की नामावली से यह बात प्रकट हो जाती है कि उनमें अर्चना की विधि का वर्णन है। **'नृसिंह-तापनीय उपनिषद्'** की बहुत टीकाएँ हैं। उनमें एक **शङ्कराचार्य** की भी है और एक उनके **गुरु गौड़पादाचार्य** की भी है। इस उपनिषद् में तथा ऐसे अन्य उपनिषदों में जो अर्चना-विधियाँ लिखी गई हैं, वे अधिकतर **'तान्त्रिक'** सिद्धान्त-मूलक ही हैं। इससे यही प्रकट होता है कि **'तान्त्रिक'** अर्चना-विधि **'वैदिक'** अर्चना-विधि जैसी प्राचीन ही नहीं है, किन्तु उसका विकसित रूप भी है।

- **'स्मृतियों'** में **'मनु-स्मृति'** को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है। **कुल्लूक भट्ट** ने **मनु-संहिता** पर जो टीका लिखी है, वह भी प्रामाणिक मानी जाती है। उसके दूसरे अध्याय के पहले श्लोक की टीका में **कुल्लूक** ने **हारीत** के ग्रन्थ का एक वाक्य उद्धृत किया है, जिसमें **वेदों** के साथ **'तन्त्र'** श्रुति-रूप में ग्रहण किए गए हैं।
- **'वृद्ध-हारीत संहिता'** में तो **'तान्त्रिक'** दीक्षा की विधि तक वर्णित है।
- **'उशनः - संहिता'** में **'पञ्च - रात्र'** और **'पाशुपत धर्म'** का स्पष्ट उल्लेख है।
- **'कात्यायन-संहिता'** में **गणेश, गौरी** तथा अन्य **देव-देवियों** की उपासना का पूरा वर्णन है।
- **'व्यास-संहिता'** में लिखा है कि **गुरु-विद्या** का जप करना चाहिए एवं स्फटिक आदि की मालाओं का उपयोग तथा **गायत्री** के सहित **रुद्र** की उपासना करनी चाहिए।
- **'सांख्य-संहिता'** में लिखा है कि **देवता के ध्यान** के बाद **स्फटिक** आदि की मालाओं से **जप** करना चाहिए। कितनी माला **जप** हो गई, इसकी संख्या बाँएँ हाथ की अँगुलियों के पोरों से जाने रहना चाहिए।

- **'वृद्ध-गौतम-संहिता'** में धर्म-शास्त्र के ग्रन्थ-कारों की सूची दी गई है। इस सूची में **ब्रह्मा, उमा** और **महेश्वर** के नाम हैं।
- इस प्रकार उक्त धर्म-शास्त्रों में जिस प्रामाणिक रूप से **'तन्त्र-शास्त्र'** का महत्त्व स्वीकार किया गया है, उससे यही जान पड़ता है कि धर्म-शास्त्र **'तन्त्र-शास्त्र'** के पक्ष में है और उसको आप्त-शास्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं।
- **'पुराण-ग्रन्थों'** में तो **'तन्त्र-शास्त्र'** का प्रतिपादन और भी स्पष्ट रूप से किया गया है।
- **'श्रीमद्-भागवत'** के एकादश स्कन्ध में कहा गया है कि **केशव** की पूजा **'तान्त्रिक विधि'** से करनी चाहिए। इसी स्कन्ध में लिखा है—''लोग **'तन्त्रों'**-द्वारा **'कलि-युग'** में मेरी पूजा कैसे करें, सो सुनो। उनको मेरी **डोल-यात्रा, रथ-यात्रा** आदि यात्राएँ देखनी चाहिए, **वैदिक** और **'तान्त्रिक'** विधि से दीक्षा लेनी चाहिए और जिन **व्रतों** में मेरी पूजा होती है, वे **व्रत** करने चाहिए।''
- **'ब्रह्म-पुराण'** में कहा गया है कि **''आम के बाग में भुवनेश्वर के मन्दिर में जाकर मनुष्य को वैदिक और 'तान्त्रिक' विधि से महा-देव की पूजा करनी चाहिए।''** उक्त पुराण का यह कथन **रघुनन्दन** भट्ट ने अपने **'पुरुषोत्तम-तत्त्व'** नाम के ग्रन्थ में उद्धृत किया है।
- **'कूर्म-पुराण'** में लिखा है कि **''श्रुति और स्मृति के विरुद्ध संसार में बहुत से शास्त्र हैं। ऐसे शास्त्रों के नियम तामसिक हैं। कराल-भैरव, यामल और ऐसी अन्य पुस्तकें वाम-मार्ग का अनुकरण करती हैं''** इत्यादि। **रघुनन्दन** तथा दूसरे लोगों ने **'कूर्म-पुराण'** के इस वाक्य को भी अपने-अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है।
- **'वराह-पुराण'** में लिखा है कि विद्वान् लोगों को **जनार्दन** की पूजा वेद या **'तन्त्र'** की विधि से करनी चाहिए।

- 'पद्म-पुराण' के उत्तर-खण्ड में लिखा है कि **वैष्णव-सम्प्रदाय** में दीक्षा लिए बिना मनुष्य का **भगवद्-भक्त** होना सम्भव नहीं है।
- **'वराह-पुराण'** में **रुद्र** के महत्त्व के वर्णन में कहा गया है–"**शङ्कर** के उतने ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं, जितनी **महा-शक्तियाँ** हैं। जो **महा-शक्ति** की उपासना करता है, वह उसके पति **शङ्कर** की भी उपासना करता है। जो **देवी** की उपासना करता है, यदि वह **रुद्र** को भी प्रसन्न कर ले, तो ये **देवियाँ** भी उस साधक को सदा के लिए सिद्ध हो जाएँगी।
- **'शङ्कर-संहिता' 'स्कन्द-पुराण'** का एक भाग मानी जाती है। इसमें एक स्थान पर **शङ्कर** ने कहा है–"**वेद, शैवागम, 'आगम' और पुराणों का तत्त्व मन को मोहित करता है, इसंलिए उसे गुप्त रखना चाहिए।**" यहाँ **'शैवागम'** और **'आगम'** से **'तन्त्र-शास्त्र'** का ही अर्थ है।
- उक्त कुछ उल्लेखों से प्रकट होता है कि **पुराणों** में **'तन्त्रों'** का समर्थन किया है और उनकी उपासना-विधि का महत्त्व भी स्वीकार किया गया है।
- **'रामायण'** और **'महा-भारत'** में भी **'तान्त्रिक'** उपासना का पूरा समर्थन किया गया है।
- **'रामायण'** में **'बला'** और **'अति-बला'** नाम की विद्याओं का उल्लेख हुआ है। ये **'तान्त्रिक'** विद्याएँ हैं और इन्हें प्राप्त करने की विधि **'तन्त्र-सार'** नाम के संग्रह-ग्रन्थ में दी गई है।
- **'महा-भारत'** के शान्ति-पर्व के २५६ वें अध्याय में **मोक्ष-धर्म** के विषय में ७, ८, ६ वें श्लोक में **युधिष्ठिर** ने **भीष्म** से पूछा है–"मैंने सुना है कि जैसे-जैसे युग बीतते गए, वैसे-ही-वैसे **'वैदिक'** धर्म भी धीरे-धीरे शिथिल होता गया। **सत्य-युग** के लिए धर्म का एक प्रकार है, **त्रेता** के लिए दूसरा, **द्वापर** के लिए तीसरा और **कलि-युग** के लिए चौथा है। मनुष्य की युगानुसार

शक्ति के अनुसार धर्म के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार **वेदों** में माने गए हैं। **वेदों** के वचन सत्य हैं और इन्हीं वचनों से **सर्वतोमुखी वेद** उत्पन्न हुए हैं।"

- उक्त **सर्वतोमुखी वेद** ये **'तन्त्र'** ही हैं। **वेदों** की तरह **स्मृतियाँ** भी सब वर्णों को समान अधिकार नहीं देतीं। **स्मृतियों** का भी अध्ययन शूद्रों के लिए वर्जित है। इसलिए **सर्वतोमुखी वेद 'तन्त्र'** ही हैं क्योंकि **'तन्त्रों'** में सब वर्णों को समानता का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार शास्त्रानुसार जिस प्रकार **वेदों** का कोई प्रणेता नहीं, अपितु वे **चतुर्मुख ब्रह्मा** के द्वारा कहे गए हैं, उसी प्रकार शास्त्रानुसार **'तन्त्रों'** का भी कोई रचयिता नहीं है, किन्तु वे **शिव** के मुख से ही प्रादुर्भूत हुए हैं।

- **'महा-भारत'** के **शान्ति-पर्व** (अध्याय २८४, श्लोक १२१ से १२४) में उक्त बात का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। वहाँ **महा-देव** ने **दक्ष** से कहा है-"**षडङ्गों के सहित सम्पूर्ण वेदों** और **सांख्य-योग** से मैंने यह **'पाशुपत व्रत'** निकाला है। इसमें ऐसे कड़े नियम हैं तथा विस्तृत तप हैं कि उन्हें **देव-दानव** कोई नहीं कर सकता। यह व्रत **वेदों** और **शास्त्रों** के समस्त विधानों से श्रेष्ठ है। यह सब वर्णों और आश्रमों के लिए अच्छा और हितकर है। यह गुप्त व्रत नित्य है। तीन वर्ष और दस दिन का यह व्रत है। सज्जन इसकी प्रशंसा करते हैं और दुष्ट इसकी निन्दा करते हैं। कुछ बातों में यह **'वर्णाश्रम धर्म'** के विपरीत है, तो भी बहुत-सी बातों में उससे मिलता-जुलता भी है। इसे विद्वानों ने विहित माना है। यह फल-दायक है। इसे वे लोग करते हैं, जो आश्रमों से परे हो गए हैं।" यह स्पष्ट रूप से **'तान्त्रिक व्रत'** है, जो स्वयं उद्धरण से स्पष्ट है।

- यह जानकर लोगों को आश्चर्य होगा कि **'महा-भारत'** में **'तान्त्रिक'** शब्दावली तक मौजूद है। **'महा-भारत'** के **शान्ति-पर्व** के २८४

वें अध्याय का ७४ वाँ श्लोक इस प्रकार है–

'घण्टी चरु चेली मिली। मिली ब्रह्म-कायिकामाग्नीनाम।'

टीकाकार नीलकण्ठ ने इसका अर्थ **मन्त्र**-रूप में इस प्रकार किया है–

'ॐ रुद्र चेली चेली चेली चेली मिली मिली ॐ स्वाहा।'

- **अनुशासन-पर्व** के १४ वें अध्याय के ३७६ वें श्लोक में **कृष्ण युधिष्ठिर** से कहते हैं कि 'आठ दिन एक क्षण की तरह निकल गए और मैंने **उपमन्यु ब्राह्मण** से मन्त्र लिया।' इसके बाद कहा गया है कि '**कृष्ण** ने इसी मन्त्र को जपकर **शिव की साधना** की। फल-स्वरूप **शिव** प्रसन्न होकर **उमा**-सहित **कृष्ण** के सामने प्रकट हुए और उनको वर दिया।'
- इसी प्रकार **अनुशासन-पर्व** में जहाँ **'मोक्ष-धर्म'** की चर्चा है, कहा गया है–"**चतुर्मुख महा-लिङ्ग** और **चारु-लिङ्ग** आदि बीजों पर शासन करनेवाले और बीजों के बनानेवाले। यही क्यों, **शान्ति-पर्व** में तो इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख है कि **'सत्य-युग'** में एक बार **रुद्र** योग में व्यग्र हुए। उस समय उन्होंने **बालखिल्य ऋषियों** को **'तन्त्र-शास्त्र'** का उपदेश किया, परन्तु बाद को उनकी माया से वह फिर लुप्त हो गया।
- **शान्ति-पर्व** के २६७ वें अध्याय के ६७ वें श्लोक में **महर्षि कपिल** ने **ऋषि स्यूम** से पूछा है कि '**आगम** के सिवा और कौन-कौन शास्त्र तुमने देखा है ?' अपने उत्तर में **ऋषि स्यूम** ने बहुतेरे विषयों का उल्लेख किया और सबको **'श्रुति'** बतलाया।
- उक्त संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे प्राचीन प्रामाणिक धर्म-ग्रन्थों में **'तन्त्रों'** का महत्त्व भले प्रकार स्वीकार किया गया है और **वेद** से लेकर **पुराणों** तक में उनका प्रशंसात्मक उल्लेख होने से उनके वास्तविक गौरव का पूरा परिचय प्राप्त होता है।

- जिन लोगों को **'तन्त्र-शास्त्र'** का महत्त्व स्वीकार नहीं है, उनका यह भी कहना है कि **'तन्त्रों'** की रचना **बौद्ध-धर्म** के बाद हुई है और यह प्राचीन शास्त्र नहीं है, परन्तु उनका यह कथन प्रमाण-रहित है।

- **बौद्ध-साहित्य** के प्रमाणों से ही यह सिद्ध होता है कि स्वयं **बौद्धों** ने ही **'भारतीय-तन्त्रों'** को स्वीकार किया है। **बौद्ध** लोग भी **तारा** और **हयग्रीव** की पूजा **'तान्त्रिक'** रीति से **ध्यान** और **बीज-मन्त्रों** के द्वारा ही करते हैं।

- कुछ लोगों का कहना है कि **'भारतीय-तन्त्रों'** की रचना का स्रोत **बौद्धों** की यही पूजा है। यदि थोड़ी देर के लिए इनकी यह बात मान ली जाए, तो क्या इनसे यह पूछा जा सकता है कि यदि भारतीयों का मस्तिष्क **बौद्ध-धर्म** की प्रभाव-शाली शिक्षा से आकृष्ट हुआ था, तो उन्होंने उस धर्म के बाह्य स्वरूप से ही अपना सम्बन्ध क्यों स्थापित किया, उसके मौलिक सिद्धान्तों को क्यों नहीं ग्रहण किया? **बौद्धों** की तरह अन्य भारतीयों ने भी **एक-मात्र निर्वाण-प्राप्ति की कामना** को क्यों नहीं ग्रहण किया? **बौद्धों** के नमूने पर बनाई हुई अपने **इष्ट-देवताओं** की मूर्तियों के सामने हाथ जोड़कर **सौन्दर्य-वृद्धि, जय और यश की प्राप्ति, शत्रुओं का विनाश** आदि जैसी कामना-मूलक प्रार्थनाएँ करना क्यों नहीं त्याग किया? कामनाओं को नष्ट करने के लिए जो **योग-क्रिया** की जाती है, उसमें और **वैदिक धर्म** की **धनार्जन, शत्रु-नाश** आदि **कामना-मूलक प्रार्थनाओं** में बड़ा भारी भेद है। कहने का मतलब यह है कि **'तन्त्र-शास्त्र'** का **बौद्ध-धर्म** से सिद्धान्त का भेद है और वह **'बौद्ध-धर्म'** से पहले का शास्त्र है।

- **बौद्धों** के प्रसिद्ध ग्रन्थ **'ललित-विस्तर'** में लिखा है कि **बुद्धदेव** का जन्म होने पर उन्हें **सप्त-मातृकाओं, गौरी, गणेश, इन्द्र**

आदि की मूर्तियाँ दिखाई गई थीं तथा उनको **'निगम'**, **पुराण**, **इतिहास** और **वेदों** का विशेष ज्ञान था। यहाँ **'निगम'** से **'तन्त्र-शास्त्र'** का ही मतलब है।

◈ **बुद्ध** ने एक स्थल पर भिक्षुओं से कहा है कि 'मूर्ख लोग **ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, देवी, कार्तिकेय, कात्यायनी माता, गणपति** आदि की शरण में जाते हैं और उनको नमस्कार करते हैं। कुछ लोग **श्मशान** तथा **चौराहे पर तपस्या** करते हैं।' यही नहीं, ऐसे साधकों को पाखण्डी कहते हुए **बुद्धदेव** यह भी कहते हैं कि 'ये लोग अपनी पूजा में मद्य-मांस का भी प्रयोग करते हैं।' यदि उस समय **'तन्त्रों'** का प्रचार न होता, तो उन्हें यह सब कुछ कहने का अवसर कहाँ से मिलता? उनका यह उपर्युक्त कथन सर्वथा **'तन्त्रों'** पर ही घटित होता है, जिससे प्रकट होता है कि **बुद्धदेव** के पहले से भारत में **'तन्त्र-शास्त्र'** का प्रचार था। वह **'बौद्ध-तन्त्रों'** की नकल नहीं है।

◈ **'बुद्ध-धर्म'** से **'जैन-धर्म'** पहले का है। इस धर्म के ग्रन्थों में भी **'तन्त्र-शास्त्र'** की रहस्य-पूजा का उल्लेख हुआ है। **'दर्शन-सार'** नामक **जैन-ग्रन्थ** का हम यहाँ एक अवतरण देते हैं। इस अवतरण से **'तन्त्र-शास्त्र'** और उसकी **'रहस्य-पूजा'** की प्राचीनता अपने आप स्पष्ट हो जाती है। उक्त अवतरण इस प्रकार है–

सिरिपासणाह तित्थो सरयू-तीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकितिमुणी।।
तिमिपूरणासणेहिं अहिगय पवज्जाओ परिब्भहो।
रत्तम्बरं धरित्ता पवहियं तेण एवं तम्।।
मंसस्स णत्थि जीवो जहाफले दहियदुद्ध-सक्करए।
तम्हा तं वं छित्ता तं भक्खन्तो ण पा विट्टो।।

मज्ज ण वज्जणिज्ज दवदब्बं जह जलं तहा एदम्।
इदि लोए घोसिता पवहियं सव्व सावज्ज।।
अण्ण करे दि कण्यं अण्णो तं भुञ्जदीदि सिद्धं तम्।
परिक प्पिऊण णूणं व सिकिच्चा णिरय भुववण्णो।।

–'दर्शन–सार' (जैन–शास्त्र)

◈ अर्थात् "**भगवान् श्री पार्श्वनाथ** के तीर्थ में **सरयू नदी** के तट–वर्ती **'पलाश'** नामक नगर में **पिहिताश्रय साधु** का शिष्य **बुद्धकीर्ति मुनि** हुआ, जो **महा–श्रुत** या बड़ा भारी शास्त्रज्ञ था, परन्तु मछलियों का आहार करने से वह ग्रहण की हुई दीक्षा से भ्रष्ट हो गया और **'रक्ताम्बर'** धारण करके उसने एकान्त–मन की प्रकृति की। फल, दही, दूध, शक्कर आदि के समान **'मांस'** में भी जीव नहीं है, अतएव उसकी इच्छा करने और भक्षण करने में कोई पाप नहीं है। जिस प्रकार जल एक द्रव द्रव्य अर्थात् तरल या बहनेवाला पदार्थ है, उसी प्रकार **'शराब'** है, अतः वह त्याज्य नहीं है। इस प्रकार घोषणा करके उसने संसार में सम्पूर्ण पाप–कर्मों की परिपाटी चलाई। एक पाप करता है और दूसरा फल भोग्ता है, इस तरह के सिद्धान्त की कल्पना करके और उससे लोगों को वश में करके या अपने अनुयायी बनाकर वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।"

◈ यह तो हुआ **'तन्त्र-शास्त्र'** के महत्त्व और उसकी प्राचीनता का दिग्–दर्शन। अब हम यहाँ उसकी **धर्म–भावना** की थोड़े में चर्चा करते हैं।

***

।।आद्यायै नमः।।

विषय-प्रवेश

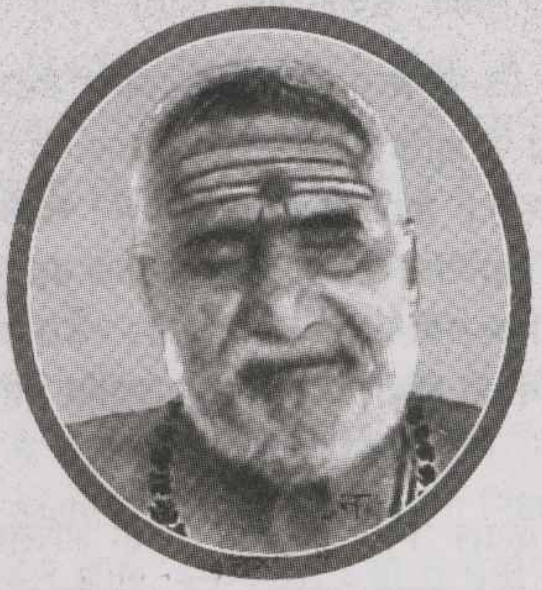

'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी

'तन्त्र-शास्त्र' की धर्म-भावना

◈ तन्त्रों में **'निर्गुण ब्रह्म'** का प्रतिपादन है। उसमें **ब्रह्म 'निष्कल'** (**प्रकृति**-रहित) कहा गया है। **'ब्रह्म'** का यह स्वरूप तुरीयावस्था के भी परे है। इसका अनुभव केवल **योग**-द्वारा **आत्म-ज्ञान** होने पर होता है। **ब्रह्म 'निष्कल'** भी है और **'सकल'** भी। **निष्कल ब्रह्म** ही **'पर-ब्रह्म'** है, पर जब वही **सकल** (**प्रकृति** से युक्त) है, तब उसकी संज्ञा **'सकल ब्रह्म'** होती है।

◈ **प्रकृति** के **त्रि-गुणात्मक** होने से **सकल ब्रह्म 'सगुण'** है। इस **सगुण ब्रह्म** में **'शक्ति'** का अधिष्ठान है और यह **'सगुण ब्रह्म'-शक्ति का आधार** है। **'ब्रह्म'** के ये **तन्त्र**-वर्णित स्वरूप वस्तुतः एक ही पदार्थ हैं। **तान्त्रिक साधक** इसी **'सकल-ब्रह्म'** के **शक्ति**-स्वरूप को **अनादि**-रूपी, **ब्रह्म**-रूपी और **चैतन्य**-रूपी जानकर **आत्म-ज्ञान** की उपलब्धि करते हैं क्योंकि यही सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

◈ प्रारम्भ में केवल **'निष्कल ब्रह्म'** का ही अस्तित्व था। वही एक था, परन्तु जब उसमें **'शक्ति'** का प्रादुर्भाव हुआ, **'इच्छा-शक्ति'** उत्पन्न हुई और उसने **'एकोऽहं बहु स्याम'** का उद्घोष किया, तब वह **'अपर'** हुआ। **'ब्रह्म'** का यही रूप **'तान्त्रिक' आराधना का केन्द्र** है। उसका यही रूप नाना देवताओं के रूपों में अस्तित्व में आया है। **'तन्त्र'** में वह **स-शक्ति ब्रह्म**-**'शिव-शक्ति'** कहा गया है। इसी से **'नाद'** का उद्भव हुआ है और उस **'नाद'** से **'विन्दु'** का। **'शारदा-तिलक'** में लिखा है-

सच्चिदानन्द - विभवात्, सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिः ततो नादो, नादाद् विन्दु - समुद्भवः।।

◈ अर्थात् **सकल** और **सच्चिदानन्द 'ब्रह्म'** से **'शक्ति'** उद्भूत हुई। **'शक्ति'** से **'नाद'** और **'नाद'** से विन्दु। इसी **'विन्दु'** में उच्च कोटि का साधक **'शिव-शक्ति'** का ध्यान करता है। वह इस **शक्ति-मय 'ब्रह्म'** अर्थात् **'शिव-शक्ति'** को **माया के बन्धन** और

आवरण से बँधे तथा ढँके परम **'विन्दु'** के रूप में स्थित ध्यान करता है। **'विन्दु'** की चने से उपमा दी गई है। चने के भीतर दो दाने होते हैं। यह परम **'विन्दु' प्रकृति-पुरुष** अर्थात् **शिव-शक्ति** इन्हीं दोनों के रूप का है। **शब्द-ब्रह्म 'अपर-ब्रह्म'** है। **शब्द-ब्रह्म** शक्तियों की—**सत्, रज** और **तम** गुणों के सहित **ज्ञान, इच्छा** और **क्रिया** की शक्तियों का—**त्रिमूर्ति** में अपने आपको प्रगट करता है।

- **तन्त्रों** की **रहस्य-पूजा** में **प्रथम तत्त्व** के शोधन के बाद सर्व-प्रथम उसमें इन **शिव-शक्ति** की **'आनन्द-भैरव'** और **'आनन्द-भैरवी'** के रूप में पूजा होती है।

- परम **'विन्दु'** से निकली **'रौद्री'** अर्थात् **रुद्र** और उनकी शक्ति। इनका रूप **'अग्नि'** है और इनका कार्य **'ज्ञान'** है।
  फिर निकली **'ज्येष्ठा'** अर्थात् **विष्णु** और उनकी शक्ति। इनका रूप **'सूर्य'** है और इनका कार्य **'क्रिया'** है।
  तब **'वामा'** अर्थात् **ब्रह्मा** और उनकी शक्ति निकली। इनका रूप **चन्द्रमा** है और कार्य **'इच्छा'** है। इसी से **देवी** को **इच्छा**-शक्ति, **क्रिया**-शक्ति और **ज्ञान**-शक्ति कहते हैं।

- **'शक्ति'** माया और **मूल-प्रकृति** दोनों है। **'माया'** से **'ब्रह्म'** अपने भिन्न-भिन्न रूपों को प्रकट करता है। **'मूल-प्रकृति'** उसकी वह स्थिति है, जो व्यक्त होने पर **'नाम-रूप'** का **'विश्व'** होती है।

- **'देवी'** महा-शक्ति है। वह **'महा-माया'** है क्योंकि उसी की माया से इस संसार का उद्भव होता है। **माया की अधीश्वरी** होने से वह **'महा-माया'** है। वह **'अविद्या'** है क्योंकि वह **'बन्धन'** में डालती है। वह **'विद्या'** है क्योंकि वह **'मुक्त'** करती है और संसार का संहार करती है। वह **'प्रकृति'** है और सृष्टि के पहले होने से **'आद्या शक्ति'** है।

- देवी **'पर-ब्रह्म-रूप'** में **'रूप'** और **'गुण'** से परे है। **'देवी'** के तीन रूप हैं। पहला **'पर-रूप'** है, जिसको कोई नहीं जानता। दूसरा

'**मन्त्र-रूप**' है, जो उसका '**सूक्ष्म रूप**' है। तीसरा '**स्थूल रूप**' है—यह हाथ-पैर आदिवाला रूप है। उसके इसी रूप का वर्णन '**तान्त्रिक**' और **पौराणिक** स्तोत्रों में किया गया है।

- '**प्रकृति**' के रूप में **देवी—ब्रह्मा, विष्णु** और **महेश्वर** का कारण है। अतएव उसके '**नर**' और '**नारी**' दोनों रूप हैं, परन्तु उसका ध्यान '**स्त्री-रूप**' में ही होता है क्योंकि वह '**जगज्जननी**' है।
- '**महा-देवी**' के रूप में वह **सरस्वती, लक्ष्मी, गायत्री, दुर्गा, त्रिपुर-सुन्दरी, अन्न-पूर्णा** और उन सब देवियों के रूप में, जो '**पर-ब्रह्म**' के अवतार हैं, विद्यमान है।
- **सती, उमा** और **गौरी** के रूप में देवी **शिव की अर्द्धाङ्गिनी** है। **दक्ष** के यज्ञ के पहले **सती** के रूप में उसने **शिव** के सामने अपने आपको अपने **दस प्रसिद्ध रूपों** में प्रकट किया। उसके ये रूप '**दस महा-विद्याओं**' के नाम से प्रख्यात हैं। **काली, बगला, छिन्न-मस्ता, भुवनेश्वरी, मातङ्गी, षोडशी, धूमावती, त्रिपुर-सुन्दरी, तारा** और **भैरवी**—यही '**दस महा-विद्याएँ**' हैं।
- **जगज्जननी** के इन रूपों की अर्चना '**तन्त्रों**' में '**वाम-मार्ग**' के अनुसार निर्दिष्ट की गई है। उसमें '**वाम-मार्ग**' के साधकों के '**तीन भाव**' या स्वभाव बताए गए हैं। ये **पशु, वीर** और **दिव्य** भाव हैं।
- '**पशु-भाव**' में रजोगुण—तमोगुण पर प्रभाव डालता है, जिससे **भ्रान्ति, तन्द्रा** और **आलस्य** का उद्भव होता है। '**पशु**'-शब्द '**पाश**' से बना है। वह साधक '**पशु**' है, जो **१. घृणा, २. लज्जा, ३. भय, ४. शोक, ५. जुगुप्सा, ६. कुल, ७. शील** और ८. **जाति**—इन '**आठ पाशों**' में बँधा है। '**कुब्जिका-तन्त्र**' में यह लिखा है।
- "**पशु-भाववाले साधक** पशु हीं होते हैं। पशु-साधक **यन्त्र** नहीं

छूता, न मन्त्र का जप करता है। वह **यज्ञों** और **तन्त्रों** को सन्देह की दृष्टि से देखता है, **मन्त्रों** को अक्षर-मात्र समझता है, **गुरु** के प्रति श्रद्धा नहीं करता, **मूर्ति** को पत्थर का खण्ड समझता है, **देवताओं** में भेद-बुद्धि रखता है और बिना मद्य-मांस के पूजा करता है। अज्ञान-वश सदा नहाने-धोने तथा दूसरों की निन्दा करने में लगा रहता है।"

- **'दिव्य भाव'** के लक्षण **'कुब्जिका-तन्त्र'** के सातवें अध्याय में ये दिए हैं—जो **नित्य स्नान-सन्ध्या** करता है, **स्वच्छ वस्त्र** धारण करता है, **भस्म** या **रक्त-चन्दन** का **त्रिपुण्ड** लगाता है, **रुद्राक्ष की माला** पहनता है, **जप** और **अर्चना** करता है, **नित्य दान** करता है; **वेद, शास्त्र, देवता** और **गुरु** का विश्वास करता है और सभी **देवताओं** को कल्याण-रूप मानता है, वह **दिव्य-भाववाला साधक** है।

- **दिव्य-भाववाला साधक** स्त्रियों के पैरों का अभिवादन करता है, उन्हें सदा **गुरु**-वत् मानता है, **देवी** की निशा में पूजा करता है, पान खाकर अर्थात् भोजन कर **जप** करता है, **'कुल-वृक्ष'** (मन्त्र-तन्त्र की ज्ञाता **'कुल-स्त्री'**) का अभिवादन करता है, **आद्या** को सब कुछ अर्पण कर देता है, इस विश्व को **शक्ति** से व्याप्त **देवता-स्वरूप** समझता है, **शिव** सब में है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में **'शिव-शक्ति'** व्याप्त है—सदा इसी भाव में रहता है, **देवता-भाव** प्राप्त करने तथा उसे बनाए रखने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है।

- इस **भाव-भेद** के सम्बन्ध में **'वामकेश्वर-तन्त्र'** में इस प्रकार लिखा है—जन्म से १६ वर्ष के वय तक **'पशु-भाव'** रहता है। उसके आगे ५० वर्ष के वय तक **'वीर-भाव'** और तब **"दिव्य-भाव'** रहता है। अन्त में ये **'तीनों भाव'** मिल जाते हैं और तब साधक के मन की दशा **'कुलाचार'** के अनुरूप हो जाती है। उस दशा

में वह **देवता**-सदृश हो जाता है। इसी से साधक के लिए **'भावैक्य'** का अभ्यास श्रेयस्कर है।

◈ साधक के लिए **'दीक्षा'** और **'अभिषेक'** आदि संस्कार अनिवार्य हैं। पहले गुरु से **'दीक्षा'** लेनी पड़ती है। इसके बाद **'अभिषेक'** होता है।

◈ **'अभिषेक'** ८ प्रकार के हैं। पहला **'शाक्ताभिषेक'** साधना का मार्ग ग्रहण करने के समय होता है। इसके बाद **'पूर्णाभिषेक'** होता है। इस अभिषेक से साधक **'दक्षिणाचार'** के बाद के आचार का अधिकार प्राप्त करता है। अपने मूल-मन्त्र का पुरश्चरण करने के बाद ही वह इस **'अभिषेक'** का अधिकारी होता है। तीसरा **'क्रम-दीक्षाभिषेक'** है। यह अभिषेक होने पर साधक यज्ञोपवीत को माला की तरह धारण करता है। इसके बाद अनेक परीक्षाओं के अनन्तर **'साम्राज्याभिषेक'** और **'महा-साम्राज्याभिषेक'** होता है। अन्त में कठिनतर **'योग-दीक्षाभिषेक'** होता है। इन संस्कारों तक साधक पञ्चाग-पुरश्चरण कर चुकता है। **'योग-दीक्षाभिषेक'** के बाद पञ्चाग-योग करने पर उसका **'पूर्ण-दीक्षाभिषेक'** होता है। इसके बाद वह **'महा-पूर्ण-दीक्षाभिषेक'** का अधिकारी होता है। इस स्थिति में वह शिखा-सूत्र त्याग कर **'परमहंस'** की गति को प्राप्त करता है।

◈ **'तन्त्रों'** में साधकों के **'सात भेद'** बताए गए हैं। एक मत के अनुसार वे **नौ प्रकार** के होते हैं। **'कुलार्णव'** में उनके नाम श्रेणी के अनुसार **वेदाचार** (तान्त्रिक वेदाचार), **वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार** (अघोराचार, योगाचार), **कौलाचार** आदि गिनाए गए हैं। इनमें **'अघोराचार'** और **'योगाचार'** का **'कुलार्णव'** में उल्लेख नहीं है। ये भिन्न सम्प्रदाय नहीं हैं। प्रत्येक साधक को इन भिन्न-भिन्न श्रेणियों को पार कर अन्त में **'कौल'** की स्थिति प्राप्त करनी पड़ती है।

- **'वेदाचार'** में सभी **वैदिक नित्य-कर्म** करने पड़ते हैं। इसके सिवा इसमें दूसरे सभी आचार शामिल रहते हैं। धर्म की दृढ़ता के लिए इस आचार में **बाह्य** और **कर्म-परक पूजा** होती है। यह **कर्म-काण्ड-प्रधान** है।

- दूसरे **'वैष्णवाचार'** में साधक अन्ध-विश्वास से निकल कर **'पर-ब्रह्म'** की **इच्छा**-शक्ति का ज्ञान प्राप्त करता हैं। यह **भक्ति**-प्रधान है।

- धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश के भाव से साधक **'शैवाचार'** में प्रवेश करता है। इसमें **भक्ति** और **अन्तर्लक्ष्य** का मेल होता है। यह **ज्ञान-प्रधान** है।

- इसके बाद **'दक्षिणाचार'** है। इसमें **'पर-ब्रह्म'** की **क्रिया, इच्छा** और **ज्ञान**-शक्तियों की ध्यान-धारणा की जाती है। साधक **गुण-त्रय** के समन्वय का अनुभव करता है और **'पूर्णाभिषेक'** की स्थिति प्राप्त करता है। इस प्रकार वह **'शाक्त'** होता है और **ब्रह्मा, विष्णु** तथा **महेश** की शक्तियों की पूजा करने का अधिकारी होता है। इसी स्थिति में साधक दीक्षा ग्रहण कर **'वामाचार'** का अधिकारी होता है।

- उक्त चारों आचारों को पार करने पर ही साधक इस स्थिति को प्राप्त करता है। ये चारों आचार **'दक्षिणाचार'** कहलाते हैं और मनुष्य जन्म से ही इनका अधिकारी है। यहाँ तक **'प्रवृत्ति-मार्ग'** रहा, परन्तु **'वामाचार'** में प्रवेश करने पर वह **'निवृत्ति-मार्ग'** ग्रहण करता है। इस मार्ग में **'प्रवृत्ति'** की शक्ति का ऐसे ढङ्ग से उपयोग किया जाता है कि वह अपने आप विनष्ट हो जाए। इसमें केवल खाने-पीने और भोग की इच्छाओं का ही दमन नहीं किया जाता है, किन्तु साधक को **'आठ पाश'** भी तोड़ने पड़ते हैं। इस प्रकार वह **'शिवत्व'** को प्राप्त करता है। इस आचार से साधक जो भाव ग्रहण करता है, वह क्रमशः अगले दोनों आचारों में पूर्ण होता है। साधक संसार की **'अविद्या'** से क्रमशः मुक्त हो जाता है और

उसका किसी से **राग** नहीं होता, न किसी से **द्वेष** करता है और न किसी से उसे **लज्जा** होती है क्योंकि वह **कुल, जाति** और **समाज के कृत्रिम बन्धनों से मुक्त** हो जाता है।

- यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि यह प्रतिबन्ध नहीं है कि साधक को इन आचारों में से प्रत्येक आचार में क्रम से दीक्षित होना ही पड़ता है। वह किसी भी आचार से अपनी साधना का आरम्भ कर सकता है। यदि उसका जन्म **'वामाचार'**-वंश में हुआ है, तो वह पूर्ण रूप से **'वाम-मार्ग'** का अधिकारी है क्योंकि वह अपने पहले के जन्मों में प्रारम्भिक आचारों को पूर्ण कर चुका होता है।
- साधक को **देवता की पूजा** करने का तभी अधिकार प्राप्त होता है, जब वह **'पञ्च-शुद्धियाँ'** करता है। **१. स्थान - शुद्धि, २. आत्म - शुद्धि, ३. द्रव्य - शुद्धि, ४. देवता - शुद्धि** और **५. मन्त्र - शुद्धि** – यही **पाँच शुद्धियाँ** हैं।
- **पूजा-गृह** को स्वच्छ रखना और उसे मालाओं से अलंकृत रखना तथा सुवासित करना **'स्थान-शुद्धि'** है।
- **स्नान, भूत-शुद्धि, प्राणायाम, षडङ्गादि न्यास** करना **'आत्म-शुद्धि'** है।
- **मूल-मन्त्र** और **अस्त्र-मन्त्र (फट्)** से अभिमन्त्रित जल को पूजा-द्रव्यों पर छिड़क कर और उनको **धेनु-मुद्रा** दिखलाकर उन्हें अमृत-मय बनाना **'द्रव्य-शुद्धि'** है।
- **देवता** को उपयुक्त **पीठ** पर स्थापित कर **प्राण-मन्त्र** से उसकी **शक्ति का आवाहन** कर उसे **मूल-मन्त्र** से तीन बार स्नान करा कर वस्त्राभूषण पहना कर **धूप-दीप** करके **पूजन** करना **'देवता-शुद्धि'** है।
- **मूल-मन्त्र** को मिलाकर **मातृका-मन्त्र** का **अनुलोम-विलोम जप** करना **'मन्त्र-शुद्धि'** है। यथा–

भूत - शुद्धिरात्म - शुद्धिर्द्रव्याणां शोधनं तथा।
मन्त्र - शुद्धिर्देव-शुद्धिः, पञ्च - शुद्धिरितीरिता।।
पञ्च - शुद्धि - विहीनेन, यत् - कृतं न च तत्-कृतम्।
यावन्न कुरुते तत्तु, तावद्-देवतार्चनं कुतः?।।

- अर्थात् **भूत-शुद्धि, आत्म-शुद्धि, द्रव्यों का शोधन, मन्त्र-शुद्धि** तथा **देव-शुद्धि**—ये **पञ्च-शुद्धियाँ** कही गई हैं। **'पञ्च-शुद्धि'** विहीन जो कर्म होता है, वह निष्फल होता है। जब तक इन्हें नहीं किया जाता, तब तक देवता का अर्चन कहाँ?

- ऐसे ही साधक **'वाम-मार्गी'** होते हैं और उनके अर्चन में प्रसिद्ध **'पञ्च-मकारों'** का उपयोग होता है। इनका उपयोग इस उद्देश्य से होता है कि सदा-शिव से ऐक्य होकर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो।

- **'पञ्च-मकार'** अर्थात् **१. मद्य, २. मांस, ३. मीन, ४. मुद्रा** और **५. मैथुन** (नारी-पूजा) का उपयोग एक-मात्र **'चक्रार्चन'** में ही विहित माना गया है, अन्यत्र नहीं। इसके सिवा इनका अधिकारी केवल **'पूर्णाभिषिक्त'** साधक ही होता है। इतर साधक इनका संग्रह करने के अधिकारी नहीं माने गए हैं। इस दृष्टि से **'पञ्च-मकार'** का उपयोग एक-मात्र पूर्ण-ज्ञान-प्राप्त साधकों के लिए ही विहित है।

- ऊपर से **'पञ्च-मकार'** का विधान साधारण लोगों को भले ही भयङ्कर प्रतीत हो, पर **'तान्त्रिक'** दृष्टि से इसका उद्देश्य रहस्य-पूर्ण है।

- वास्तव में **'मद्य, मांस'** आदि पाँचों वस्तुएँ प्रलोभन की वस्तुएँ हैं। यदि साधक इनके प्रलोभन में नहीं पड़ता, तो उसका मार्ग स्पष्ट है, वह **परमानन्द** को प्राप्त करता है। किसी साधक के लिए यह कोई हँसी-खेल का काम नहीं है कि उसके सम्मुख एक

नव-यौवना सुन्दरी बैठी हो और वह अचल भाव से **भगवती** के रूप में उसकी पूजा करता रहे। **भगवती** को अर्पण करने के बाद वह **'मद्य-पान'** भी करता है, पर **मदोन्मत्त** होने के लिए नहीं, किन्तु **एकाग्र-चित्त** होकर अपने **इष्ट** पर ध्यान जमाने के लिए। वह **मांस, मत्स्य** तथा अन्य सुस्वादु भोजन-सामग्री **(मुद्रा)** भी खाता है, पर इसलिए नहीं कि ये स्वादिष्ट पदार्थ हैं, किन्तु धर्म-कार्यार्थ अपना शरीर पुष्ट बनाए रखने के लिए। **'पञ्च-मकार'** के संग्रह का वस्तुतः यही उद्देश्य है।

◈ **तान्त्रिक साधक** उक्त आनन्द-दायक पदार्थों के द्वारा **ईश्वर का सान्निध्य** ही प्राप्त करने को यत्न-वान् होता है। ऐसी दशा में उसे अपने **मनो-भावों** को दबाना पड़ता है और उन भोगों को उसे **इष्ट-सिद्धि** का साधन बनाना पड़ता है। कितना **दुर्धर्ष कार्य** है! कितनी **विकट साधना** है! यह अपने आप स्पष्ट है।

◈ इसी से **'कुलार्णव'** में स्पष्ट कर दिया गया है कि **'पञ्च-मकार'** का संग्रह दिल्लगी नहीं है। लिखा है-"अनेक लोगों की यह मिथ्या धारणा है कि **'मद्य-पान'** आदि से आत्मा पवित्र हो जाती है। ऐसा समझना सरासर भूल है। यदि ऐसा होता, तो आज सारे **'मद्यप'** ब्रह्म-ज्ञानी हो जाते। यदि **'मैथुन-मात्र'** से **मोक्ष** सुलभ हो सकता, तो उसकी उपलब्धि सभी के लिए एक साधारण बात हो गई होती। व्यर्थ का **'मद्य-पान'** घोर पाप है। यहाँ तक कि उसकी गन्ध आ जाने से पाप लगता है, अतएव द्विजों को सभी प्रकार के **'मद्यों'** से दूर रहना चाहिए। यदि कभी धोखे से **'मद्य'** पर दृष्टि पड़ जाए, तो सूर्य का दर्शन कर लेना चाहिए, यदि कभी धोखे से उसकी गन्ध नाक तक पहुँच जाए, तो **प्राणायाम** करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

◈ **'कुलार्णव'** के उक्त अवतरण से स्पष्ट हो गया होगा कि व्यर्थ का **'मद्य-पान'** स्वयं **तन्त्रों** में भी वर्जित है। उनमें उसका विधान

केवल '**चक्रार्चन**' में है और सो भी **पूर्ण अभिषिक्त साधकों** के लिए ही !

◈ **तान्त्रिक अर्चन** में '**पञ्च-मकार**' के सिवा '**पञ्च-तत्त्वों**' का भी समावेश किया गया है। ये पाँच तत्त्व हैं – **१. गुरु-तत्त्व, २. मन्त्र-तत्त्व, ३. मनस्तत्त्व, ४. देव-तत्त्व** और **५. ध्यान - तत्त्व** अर्थात् अर्चना के इन प्रधान अङ्गों का ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक साधक का प्रथम कर्तव्य है। उसे **गुरु, मन्त्र, मन, देवता** और **इष्ट-ध्यान** को पूर्णतः हृदयङ्गम करना चाहिए, अन्ध-वत् उनका अनुसरण नहीं करना चाहिए।

◈ '**तन्त्र**' का महत्त्व उसकी '**साधना**' की विधि में है। वह '**साधना**' की विधि न तो केवल **उपासना** या **पूजा** है, न **प्रार्थना** या स्तवन है और न **इष्ट** के आगे अपना दुखड़ा रोना तथा अपने कर्मों पर पश्चात्ताप करना है। वह '**साधना**'–**पुरुष** और **प्रकृति को एक करने की क्रिया** है। यह शरीर के भीतर '**पुरुष-तत्त्व**' तथा '**मातृ-तत्त्व**' का संयोग करती है और '**सगुण**' को '**निर्गुण**' करने का प्रयत्न करती है।

◈ '**तान्त्रिक साधना**' का यह उद्देश्य है कि '**स्वराट्**'–'**विराट्**' में मिल जाए और यह बात '**कुण्डलिनी**' को जाग्रत कर '**षट्-चक्र**' के भेद द्वारा की जाती है। यह कोई दार्शनिक चर्चा नहीं है, किन्तु इसे क्रिया-रूप में करना पड़ता है। इसी से '**तन्त्र**' गर्व के साथ घोषणा करता है–"**सद्-गुरु के निरीक्षण में अभ्यास करके देख लो। यदि शीघ्र ही कोई फल प्राप्त न हो, तो छोड़ बैठना।**"

◈ '**तन्त्र**' में '**धर्म**' के दो भाग हैं–**१. समाज-धर्म** और **२. साधना-धर्म**। '**समाज-धर्म**' में जन्म और वर्ण-भेद का विचार है, पर '**साधना-धर्म**' में जात-पाँत का विचार नहीं है–

प्रवृत्ते भैरवी - चक्रे, सर्वे वर्णा द्विजोत्तमाः।
निवृत्ते भैरवी - चक्रे, सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्।।

◈ **'तन्त्र'** में ब्राह्मण, शूद्र, स्त्री-पुरुष, **ऊँच-नीच का भेद** नहीं किया गया है। उसमें एक-मात्र **'अधिकारी'** का महत्त्व है।

◈ **'तन्त्र'** किसी ऐसे **ईश्वर** का उपदेश नहीं करता, जो सुदूर स्वर्ग में बैठा हुआ सारे ब्रह्माण्ड पर शासन करता हो।

◈ **'तन्त्र'** की दृष्टि में तो **'साधक का शरीर'** ही विश्व है और उसमें जो **'आत्म-शक्ति'** स्थित है, वही उसका **'आराध्य-देव'** है। **'साधना'** द्वारा **'साधक'** इसी **'आत्म-शक्ति'** का दर्शन करता है।

◈ **'तन्त्र'** कहता है कि 'अगर तुम किसी का त्याग करना चाहते हो, तो पहले उससे पूर्ण रूप से परिचित हो जाओ, तब उसका त्याग करो और तुम यदि किसी वस्तु को स्वीकार करना चाहते हो, तो तभी स्वीकार करो, जब उसकी अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर लो।' कहा भी है–

अन्यान्य-शास्त्रेषु विनोद-मात्रम्,
न तेषु किञ्चिद् भुवि दृष्टिमस्ति।
चिकित्सित-ज्योतिष-तन्त्र-वादाः,
पदे - पदे प्रत्यवगाहयन्ति।।

◈ अर्थात् दूसरे सब शास्त्र मानसिक विनोद-मात्र हैं, उनका कोई फल संसार में दृष्टि-गत नहीं होता, परन्तु **चिकित्सा, ज्योतिष** और **'तन्त्र-शास्त्र'** पद-पद पर अपनी सत्यता प्रदान करते हैं।

***

।।आद्यायै नमः।।

स्वरूप-निरूपण

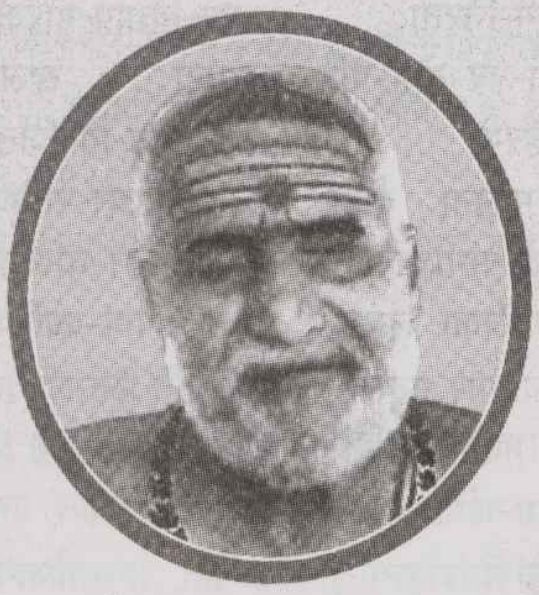

'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी

महा-निर्वाण तन्त्र, मुण्ड-माला तन्त्र,
कुलार्णव तन्त्र, समयाचार तन्त्र,
कामाख्या तन्त्र, माया तन्त्र,
रुद्र-यामल तन्त्र के उद्धरण

।। पार्वती उवाच ।।

उच्छृङ्खला मदोन्मत्ताः, पाप-कर्म-रताः सदा।
कामुका लोलुपाः क्रूरा, निष्ठुरा दुर्मुखा शठाः।।१।।
स्वल्पायुर्मन्द-मतयो, रोग-शोक-समाकुलाः।
निःश्रीका निर्बला नीचा, नीचाचार-परायणाः।।२।।
नीच-संसर्ग-निरताः, पर-वित्ताप-हारकाः।
पर-निन्दा-पर-द्रोह-परि-वाद-पराः खलाः।।३।।
पर-स्त्री-हरणे पाप-शङ्का-भय-विवर्जिताः।
निर्धना मलिना दीना, दरिद्राश्चिर-रोगिणः।।४।।
विप्रा शूद्र-समाचाराः, सन्ध्या-वन्दन-वर्जिताः।
अयाज्य-याजका लुब्धा, दुर्वृत्ताः पाप-कारिणः।।५।।

- कलि के जीव-गण शृङ्खला-रहित (अर्थात् जिनकी वेदादि-रूपी बेड़ियाँ कट गई हैं), मदोन्मत्त, सर्वदा पापों में लिप्त, कामी, धन के लोभी, क्रूर, निष्ठुर, अप्रिय-भाषी और शठ हो जाएँगे।।१।।
- इस काल के लोग अल्पायु, मन्द-मति, रोग-शोक से युक्त, श्री-हीन, बल-हीन, नीच होकर नीच कार्यों को करेंगे।।२।।
- इस काल में सभी नीचों का सङ्ग करेंगे। पराए वित्त को हरण करनेवाले, पर-निन्दा, पर-द्रोह, पराई हानि में तत्पर और खल हो जाएँगे।।३।।
- पराई स्त्री के हरण करने में ये लोग पाप की शङ्का या भय नहीं करेंगे। ये लोग निर्धन, मलिन, दीन और सदा रोगी रहकर समय बिताएँगे।।४।।
- ब्राह्मण सन्ध्या-वन्दन आदि से हीन हो शूद्र के समान आचार करेंगे। वे लोभ के वश होकर अयाज्य-याजन करेंगे अर्थात् जिस पुरुष की पुरोहिताई करने से अधर्म होता है, उसके पुरोहित बनकर यज्ञ कराएँगे और दुष्ट-चरित्र होकर पाप-कार्य करेंगे।। ५।।

अकार्य-कारिणः क्रूरा, धर्म-मार्ग विलोपकाः।
हिताय यानि कर्माणि, कथितानि त्वया प्रभो!।।६।।
मन्ये तानि महा-देव!, विपरीतानि मानवे।।७।।
युग - धर्म - प्रभावेण, स्वभावेन कलौ नराः।।८।।

भविष्यन्त्यति - दुर्वृत्ताः, सर्वथा पाप - कारिणः।
तेषामुपायं दीनेश!, कृपया कथय प्रभो!।।९।।

◈ ये बुरी क्रियाओं के करनेवाले, क्रूर और धर्म-मार्ग का लोप करनेवाले होंगे।। ६।।

◈ हे प्रभु! आपने प्राणियों के हितार्थ जिन कार्यों के करने का उपदेश किया है, मैं जानती हूँ कि कलि-युग में वे कार्य मनुष्यों के विपरीत हो जाएँगे।। ७।।

◈ युग-धर्म के प्रभाव से कलि-युगी मनुष्य स्वभाव से ही अत्यन्त दुर्वृत्त और पाप करनेवाले होंगे।। ८।।

◈ हे प्रभु, हे दीनों के स्वामी! उनका क्या उपाय होगा, उसे आप कृपा करके मुझसे कहें।। ९।।

।। महा-देव उवाच।।

धन्याऽसि सु-कृतज्ञाऽसि, हिताऽसि कलि-जन्मनाम्।
यद् - यदुक्तं त्वया भद्रे!, सत्यं सत्यं यथार्थतः।।१०।।
कलि-कल्मष-दीनानां, द्विजादीनां सुरेश्वरि!।।११।।
मेध्यामेध्य - विचाराणां, न शुद्धिः श्रौत-कर्मणा।
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्ट - सिद्धिर्नृणां भवेत्।।१२।।
श्रुति-स्मृति-पुराणादौ, मयैवोक्तं पुरा शिवे!।
आगमोक्त-विधानेन, कलौ देवान् यजेत् सुधीः।।१३।।
कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः, सिद्धास्तूर्ण-फल-प्रदाः।
शास्ता कर्मसु सर्वेषु, जप-यज्ञ-क्रियादिषु।।१४।।
निर्वीर्याः श्रौत-जातीया, विष-हीनोरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन्, कलौ ते मृतका इव।।१५।।
मद्-वक्त्रादुदितं धर्मं, हि त्वन्यद्-धर्ममीहते।
अमृतं स्व-गृहे त्यक्त्वा, क्षीरमार्कं स वाञ्छति।।१६।।
तन्त्राणि बहुधोक्तानि, नानाख्यानान्वितानि च।
सिद्धानां साधकानां च, विधानानि च भूरिशः।।१७।।

◈ तुम धन्य हो और सर्वज्ञ हो। वास्तव में तुम्हीं **कलि-युग** के जीवों का हित करनेवाली हो। हे कल्याणि! तुमने जो कुछ मेरे प्रति कहा है, वह सब यथार्थ में सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह वास्तव में न्यायानुसार योग्य और सत्य है। हे सुरेश्वरि! कलि-कल्मष से ग्रसित, दीन भाव को प्राप्त द्विज आदिकों को पवित्र-अपवित्र का विचार नहीं रहेगा, इस कारण वे लोग श्रुति, स्मृति और संहिता में कहे हुए कर्मों का सम्पादन करके किस प्रकार शुद्ध होंगे ?।।११-१२।।

◈ हे शिवे! मैंने पहले श्रुति, स्मृति और पुराण आदि में कहा है कि **कलि-युग में तान्त्रिक विधान** से पण्डित लोग देवताओं की पूजा करें।।१३।।

◈ **कलि-काल** में **तन्त्र** में कहे हुए समस्त मन्त्र सिद्ध और सिद्धि के देनेवाले होते हैं। ये समस्त मन्त्र समस्त कर्मों और जप यज्ञादि में श्रेष्ठ हैं।।१४।।

◈ जिस प्रकार विष-हीन सर्प की अवस्था हो जाती है, वैसे ही इस समय **वैदिक मन्त्र** आदि वीर्य-रहित और मृतक तुल्य हो रहे हैं। वे मन्त्र सत्य-युग, त्रेता और द्वापर-युग के अधिकार में थे।।१५।।

◈ जो मनुष्य मेरे मुख से निकले हुए धर्म की अवहेलना करके अन्य धर्म को ग्रहण करता है, वह पुरुष अपने घर में रखे हुए अमृत को छोड़कर आक का दूध चाहता है।।१६।।

◈ हमने अनेक प्रकार के आख्यानों से युक्त अनेक प्रकार के **तन्त्र** प्रकाशित किए हैं, उनमें साधकों व सिद्धों के लिए नाना-विध व्यवस्था लिखी हुई है।।१७।।

पारम्पर्य-क्रमायातं, वक्त्राद् वक्त्रेषु संस्थितम्।
अकथ्यं परमार्थेन, तथापि कथयामि ते।।१८।।
सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा, वेदेभ्यो वैष्णवः परम्।
वैष्णवाद् उत्तमं शैवं, शैवाद् दक्षिणमुत्तमम्।।१९।।
दक्षिणादुत्तमं वामं, वामात् सिद्धान्तमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं, कौलात् पर-तरं न हि।।२०।।

गुह्याद् गुह्य-तरं देवि!, सारात् सार-तरं परम्।
साक्षात् पर-तरं देवि!, कर्णात् कर्ण-गतं कुलम्।।२१।।
मथित्वा ज्ञान - मन्थेन, वेदागम-महार्णवम्।
सारज्ञेन मया देवि!, कुल-धर्मः समुद्धृतः।।२२।।
प्रविशन्ति कुलं धर्मं, ये वै सुकृतिनो नराः।
ते पुनर्जननी - गर्भं, न विशन्ति कदाचन।।२३।।

- वह तत्त्व परम्परा के क्रम से चला आ रहा है, एक के मुख से दूसरे के मुख में स्थित रहा है। यद्यपि वह बतलाने के योग्य नहीं है, तो भी परमार्थ के विचार से तुमसे कहूँगा।।१८।।
- सबसे श्रेष्ठ **वेदाचार** है, वेदाचार से **वैष्णवाचार** श्रेष्ठ है, वैष्णवाचार से **शैवाचार** उत्तम है, शैवाचार से **दक्षिणाचार** उत्तम है।।१६।।
- दक्षिणाचार से उत्तम **वामाचार** और वामाचार से परे फिर कोई नहीं।। २०।।
- यह **कौलाचार** गुप्त से भी गुप्त-तर और सार वस्तु से भी सार-तर वस्तु है। हे देवि, यही साक्षात् **परम तत्त्व** है और यह एक कान से दूसरे कान में होता हुआ बराबर अस्तित्व में रहा है।।२१।।
- हे देवि, **वेद** और **आगम**-रूपी महा-समुद्र को ज्ञान-दण्ड से मथकर सार-तत्त्व के ग्रहण करने वाले **महादेव** ने **'कुल-धर्म'** को उत्पन्न किया है।।२२।।
- जो सुकृती जन **कुल-धर्म** में प्रवेश करते हैं, वे फिर कभी जन्म ग्रहण नहीं करते—वे **संसार बन्धन** से मुक्त हो जाते हैं।। २३।।

दर्शनेषु च सर्वेषु, चिराभ्यासेन मानवाः।
मोक्षं लभन्ते कौले तु, सद्य एव न संशयः।।२४।।
सर्वे धर्माश्च देवेशि!, पुनरावर्तकाः स्मृताः।
कुल-धर्म-स्थिता ये च, ते सर्वेऽप्यनिवर्तकाः।।२५।।
कुलाचारं विना देवि!, कलौ सिद्धिर्न जायते।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन, साधयेत् कुल-साधनम्।।२६।।

- दर्शनों का अधिक समय तक अभ्यास करने पर ही उससे मनुष्यों को **मोक्ष** प्राप्त होता है, परन्तु **कौल** को शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।।२४।।

◈ हे देवेश्वरि! सभी धर्मवालों को फिर यहाँ लौटकर आना होगा। उनके सम्बन्ध में यही कहा गया है, परन्तु **कुल-धर्मवालों** को यहाँ नहीं लौटना पड़ेगा, सब मुक्त हो जाएँगे।।२५।।

◈ बिना **कुलाचार** के इस **कलि-काल** में उद्देश्य-सिद्धि अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। अतएव सभी उपायों से **कुलाचार** की साधना में तत्पर होना चाहिए।।२६।।

कुलाचारेण देवेशि! ब्रह्म-ज्ञानं प्रजायते।
ब्रह्म-ज्ञान-युतो मर्त्यो, जीवन्मुक्तो न संशयः।।२७।।
ये कुर्वन्ति कुलाचारं, सत्य-पूता जितेन्द्रियः।
व्यक्ताचार-दया-शीला, न हि तान् बाधते कलिः।।२८।।
गुरु-शुश्रूषणे युक्ता, भक्ता मातृ-पदाम्बुजे।
अनुरक्ताः स्व-दारेषु, न हि तान् बाधते कलिः।।२९।।
कौटिल्यानृत-हीनानां, स्वच्छानां कुल-मार्गिणाम्।
परोपकार-व्रतिनां, साधूनां किङ्करः कलिः।।३०।।

◈ हे देवेश्वरि, **कुलाचार** की साधना से **ब्रह्म-ज्ञान** का अनुभव होता है और जिस व्यक्ति को **ब्रह्म-ज्ञान** का अनुभव हो जाता है, वह **जीते जी मुक्त** हो जाता है।।२७।।

◈ जो साधक **सत्य-व्रती, पवित्र** और **जितेन्द्रिय** होकर **कुलाचार** करते हैं तथा जिनका आचार व्यक्त रहता है एवं जो **दया-शील** होते हैं, उन्हें **कलि-काल** बाधा नहीं देता है।।२८।।

◈ जो **गुरु की सेवा** में संलग्न रहते हैं, जिनको **जगज्जननी के चरण-कमलों की भक्ति** है, जो अपनी स्त्री से अनुरक्त रहते हैं, उनको **कलि** बाधक नहीं होता।।२९।।

◈ जो **कुटिलता** और **मिथ्या भाषण** नहीं करते हैं, जो **पवित्र** रहते हैं, जिनका **परोपकार का व्रत** रहता है, ऐसे साधु **कुल-मार्गियों** का **कलि** दास हो जाता है।।३०।।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः, शूद्रैरेव च जातिभिः।
वाम-मार्ग-प्रभावेण, कर्तव्यं जप-पूजनम्।। ३१।।

मूर्खो वा पण्डितो वाऽपि, ब्राह्मणो वा वरानने!
क्षत्रियो वैश्यजः शूद्रश्चाण्डालो वर-वर्णिनि!।।३२।।
सर्वे तुल्याः कुलीनाश्च, एतत् सर्वार्थ-साधनम्।।३३।।

◈ अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों को **वाम-मार्ग** के अनुसार ही **जप-पूजा** करनी चाहिए।।३१।।

◈ हे श्रेष्ठ मुखवाली, मूर्ख हो चाहे पण्डित हो, हे श्रेष्ठ रङ्गवाली, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, शूद्र हो, चाहे चाण्डाल हो—सभी **कुल-धर्मानुयायी** समान हैं। यह धर्म सब अर्थों का प्रदान करनेवाला है।।३२–३३।।

गङ्गायां पतिताम्भांसि, यान्ति गाङ्गेयतां यथा।
कुलाचारे विशन्तोऽपि, सर्वे गच्छन्ति कौलताम्।।३४।।

◈ जैसे गङ्गा में बहकर मिलनेवाले सब जल गङ्गा-जल हो जाते हैं, उसी तरह **कुलाचार** में प्रवेश करने पर सभी साधक **कौल** हो जाते हैं।।३४।।

कुल-पूजा-समं नास्ति, पुण्यमन्यज्जगत्-त्रये।
तस्माद् यः पूजयेद् भक्त्या, भुक्ति-मुक्त्योः स भाजनम्।। ३५।।
निन्दन्तु बान्धवाः सर्वे, त्यजन्तु स्त्री-सुतादयः।
जना हसन्तु मां दृष्ट्वा, राजानो दण्डयन्तु वा।।३६।।
सेवे सेवे पुनः सेवे, त्वामेव पर-दैवते!।
त्वद्-धर्म्मं नैव मुञ्चामि, मनो-वाक्-काय-कर्मभिः।। ३७।।
एवमापद्-गतस्यापि, यस्य भक्तिः सु-निश्चला।
स तु सम्पूज्यते देवैरमुत्र स शिवो भवेत् ।।३८।।
रोग-दारिद्र्य-दुःखाद्यैः, पीडितोऽप्यनिशं शिवे!।
यस्त्वामुपासते भक्त्या, नरः सद्-गतिमाप्नुयात्।।३९।।
जना स्तुवन्तु निन्दन्तु, लक्ष्मीस्तिष्ठतु गच्छतु।
मृत्युरद्य युगान्ते स्यात्, कुलं न परि-वर्जयेत्।।४०।।
ते धन्याः ते महात्मानः, कृतार्थास्ते नरोत्तमाः।
येषामुत्पद्यते चित्ते, कुल-ज्ञानं मयोदितम्।।४१।।
कुलेशि! कुल-निष्ठानां, कौलिनां महात्मनाम्।
ददामि परमं ज्ञानमन्त्य-काले विशेषतः।।४२।।

- तीनों लोकों में **कुल-पूजा** के समान दूसरा कोई पुण्य-कार्य नहीं है। इसलिए जो इस पूजा को भक्ति-पूर्वक करता है, वह साधक **भोग** और **मोक्ष** दोनों का अधिकारी हो जाता है।।३५।।
- सब भाई-बन्धु चाहे निन्दा करें, स्त्री-पुत्र आदि भी चाहे छोड़ दें, मुझे देखकर लोग चाहे हँसें अथवा चाहे राजा भी दण्ड दे, परन्तु हे पर–देवता! मैं तुम्हारी सेवा करूँगा, फिर भी तुम्हारी ही सेवा करूँगा। मन, वाणी और शरीर से तुम्हारा धर्म कभी नहीं छोड़ूँगा।।३६-३७।।
- इस तरह सङ्कट-प्राप्त जिस साधक की भक्ति भले प्रकार स्थिर रहती है, उसकी देवताओं-द्वारा पूजा होती है और मरने पर वह **शिव** होता है।।३८।।
- हे शिवे! रोग, दुःख और दारिद्र्य से पीड़ित जो व्यक्ति भक्ति से तुम्हारी उपासना करता है, वह सद्-गति को प्राप्त करता है।।३९।।
- लोग चाहे प्रशंसा करें, चाहे निन्दा, धन रहे, चाहे चला जाए, चाहे आज मृत्यु हो, चाहे युगान्त में हो, साधक **कुल-धर्म** का परित्याग न करे।।४०।।
- जिनके मन में मेरे कहे हुए **कुल-धर्म** का ज्ञान उत्पन्न होता है, वे धन्य हैं, वे महात्मा हैं, वे कृतार्थ हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष हैं।।४१।।
- हे कुलेशि! कुल-धर्म-निष्ठ **महात्मा कौलों** को मैं परम ज्ञान प्रदान करता हूँ। उनके अन्त-काल में तो विशेष करके प्रदान करता हूँ।।४२।।

समाष्टकं प्रवक्ष्यामि, शृणुष्वैकाग्र-मानसा।
येन विज्ञान-मात्रेण, सिद्धिर्भवति साधके।।४३।।
द्योतयेद् गोपयेद् देवि!, न निन्देन्न निरीक्षयेत्।
पूजयेत् भावयेच्चैव, वर्जयेन्न जुगुप्सयेत्।।४४।।
कामं क्रोधं च मात्सर्यं, विकारं चेन्द्रियोद्भवम्।
निद्राऽऽलस्यं दौर्मनस्यं, घातयेदष्टकं प्रिये!।।४५।।
मन्त्र-मुद्राऽक्ष-सूत्रं च, योगिनी-वीर-सङ्गमम्।
भैरवागममाचारमेतत् सर्वं च गोपयेत्।।४६।।
देवं गुरुं सुरां विद्यां, ज्येष्ठं वीरं च योषितम्।
शुभाशुभाः कर्मणश्च, निन्दयेन्न कदाचन।।४७।।

कन्या-योनिं पशु-क्रीडां, नग्न-स्त्रीं प्रकट-स्तनीम्।
द्यूत-विग्रह-क्लीवं च, पापिनं न च वीक्षयेत्।।४८।।
देवीं गुरुं सुधां विद्यां, शक्तिं ज्येष्ठं च संविदम्।
भक्तितः साधकान् सर्वान्, पूजयेच्च प्रयत्नतः।।४९।।
गुरु-नामं च तत्-पादावागमार्थं च मन्त्रकम्।
भैरवं भैरवीं तत्त्वं, कुलाचारं च भावयेत्।।५०।।
शाठ्यं मोहं च पैशुन्यं, पर-द्वेषं च चक्रणम्।
व्यसनं मन्त्रित्वहं च, प्रमादं च विवर्जयेत्।।५१।।
विण्मूत्रं शोणितं क्लेदं, हीनाङ्गीं पिशितं सुराम्।
कपाल-हरणं चैव, अष्टौ नैव जुगुप्सयेत् ।। ५२।।
इत्येतत् समयाचारं, यः पालयति साधकः।
स प्राप्य देवि ! सद्-भावं, जीवन्मुक्तिं च विन्दति ।।५३।।

◈ अब मैं **सम-अष्टकों** को कहता हूँ। एकाग्र मन से सुनो। इनके ज्ञान से साधक को सिद्धि प्राप्त होती है।।४३।।

◈ हे देवि! न मारे, न छिपावे, न निन्दा करे, न देखे, पूजन करे, भावना करे, तिरस्कार न करे और घृणा न करे।।४४।।

◈ हे प्रिये पार्वति! १. **काम**, २. **क्रोध**, ३. **ईर्ष्या**, ४. **मनो-विकार**, ५. **इन्द्रिय-विकार**, ६. **निद्रा**, ७. **आलस्य** और ८. **मन की दुर्बलता**—इन आठों का नाश करे।।४५।।

◈ १. **मन्त्र**, २. **मुद्रा**, ३. **माला**, ४. **सूत्र**, ५. **योगिनी** और **वीर का संयोग**, ६. **भैरव**, ७. **आगम** और ८. **आचार**—इन सब आठों को छिपावे।।४६।।

◈ १. **देवता**, २. **गुरु**, ३. **मद्य**, ४. **विद्या**, ५. **ज्येष्ठ साधक**, ६. **वीर साधक**, ७. **स्त्री** और ८. **शुभाशुभ कर्म**—इनकी निन्दा कभी नहीं करे।।४७।।

◈ १. **नग्न कन्या**, २. **पशु-क्रीड़ा**, ३. **नग्न स्त्री**, ४. **प्रकट-स्तनी स्त्री**, ५. **जुआँ**, ६. **लड़ाई-झगड़ा**, ७. **नपुंसक** और ८. **पापी**—इनको नहीं देखे।।४८।।

◈ १. देवी, २. गुरु, ३. मद्य, ४. विद्या, ५. शक्ति, ६. ज्येष्ठ, ७. भङ्ग और ८. सब साधकों की यत्न के साथ भक्ति-पूर्वक पूजा करे।।४६।।

◈ १. गुरु-नाम, २. गुरु-चरण, ३. आगम-अर्थ, ४. मन्त्र, ५. भैरव, ६. भैरवी, ७. तत्त्व और ८. कुलाचार—इन आठों की भावना किया करे।।५०।।

◈ १. शठता, २. मोह, ३. दुष्टता, ४. पर-द्वेष, ५. कुटिलता, ६. व्यसन-भाव, ७. विश्वास-घातकता और ८. प्रमाद—इन आठों का वर्जन करे।।५१।।

◈ १. मल, २. मूत्र, ३. रक्त, ४. क्लेद, ५. हीनाङ्गी, ६. मांस, ७. मद्य और ८. कपाल-हरण—इन आठ से कभी घृणा न करे।।५२।।

◈ हे देवि, जो इस समयाचार का पालन करता है, वह साधक सद्-भाव को प्राप्त कर जीवन्मुक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है।। ५३।।

चतुरशीत - लक्षेषु, शरीरेषु शरीरिणाम्।
न मानुष्यं विनाऽन्यत्र, तत्त्व-ज्ञानं तु लभ्यते।।५४।।
विना देहेन कस्यापि, पुरुषार्थो न विद्यते।
तस्माद् देह-धनं रक्ष्यं, पुण्य-कर्माणि साधयेत्।।५५।।
यावत् तिष्ठति देहोऽयं, तावत् तत्त्वं समभ्यसेत्।
सन्दीप्ते भवने को वा, कूपं खनति दुर्मतिः।।५६।।
अपत्यं मे कलत्रं मे, धनं मे बान्धवाश्च मे।
लपन्तमिति मर्त्यं हि, हन्ति काल-वृकोदरः।।५७।।
ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि-देवता भूत-जातयः।
नाशमेवानु- धावन्ति, तस्माच्छ्रेयः समाचरेत्।।५८।।
वेदाद्यनेक-शास्त्राणि, स्वल्पायुर्विघ्न - कोटयः।
तस्मात् सारं विजानीयात्, क्षीरं हंसमिवाम्भसि।।५९।।
न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्र - पठनादपि।
ज्ञानादेव हि मुक्तिः स्यान्नान्यथा वीर-वन्दिते!।।६०।।

◈ शरीर-धारियों की चौरासी लाख यौनियों में मनुष्य-योनि को छोड़कर और किसी योनि में तत्त्व-ज्ञान नहीं होता।।५४।।

- बिना देह के किसी में **पुरुषार्थ** का अस्तित्व नहीं होता। अतएव **देह-धन की रक्षा** करके साधक **पुण्य कर्मों का सम्पादन** करे।।५५।।
- जब तक यह देह स्थित है, तब तक **तत्त्वों का अभ्यास** करे क्योंकि घर में आग लगने पर दुर्मति ही कुआँ खोदना प्रारम्भ करेगा।।५६।।
- मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरा धन, मेरे बन्धु-बान्धव–इस तरह विलाप करते हुए प्राणी को भेड़िए के पेटवाला **काल** मार डालता है।।५७।।
- **ब्रह्मा, विष्णु, महेश** आदि देवता और भूत-जातियाँ सभी नाश को प्राप्त होती हैं, अतएव जो **श्रेय** है, उसी को ग्रहण करना चाहिए।।५८।।
- **वेदादि शास्त्र** अनेक हैं, आयु अल्प है, करोड़ों विघ्न उपस्थित हैं, अतएव जैसे हंस पानी से दूध निकाल लेता है, उसी तरह **सार का ज्ञान** प्राप्त करना चाहिए।।५९।।
- न तो **वेदों** के अध्ययन से मुक्ति प्राप्त होती है, न **शास्त्रों** के पढ़ने से, किन्तु **ज्ञान** से ही प्राप्त होती है, वीर-वन्दिते पार्वति! इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है।।६०।।

महा-भैरव-कालोऽयं, शिवस्य वाम-नायकाः।
अयं तु वाम-भावेन, पूज्यो मद्यादिभिः सदा।।६१।।
चण्डेश्वरः शूल-पाणिः, कथितौ वाम-नायकौ।
भैरवाद्यास्तथा वामास्तथाऽन्ये वटुकादयः।।६२।।
विष्णोस्तु वामका मूर्तिर्नृसिंहो सततं भवेत्।
राम-कृष्णौ च गोपालौ, कथितौ वाम-नायकौ।।६३।।
मार्तण्ड-भैरवो मम, मूर्तिस्सूर्यस्य कीर्तिता।
गणेशस्य तु वेतालः, उच्छिष्टो वाम-सेवितः।।६४।।
इन्द्रादयो दिगीशा ये, ते सर्वे वाम-पूजिताः।
भौमः शुक्रः सौरिरेते, वामास्तथा ग्रहो बुधः।।६५।।
असिताङ्गादयश्चाष्टौ, तथा ब्राह्म्यादि मातरः।
श्मशान-भैरवी काली, उग्र-तारा च पञ्चमी।।६६।।
त्रिपुरा भैरवी चैव, तारा त्रिपुर-सुन्दरी।
उन्मुखी चैव दुर्गा चं, मर्दिनी स्व-प्रबोधिनी।।६७।।

एतास्तु वाम-भावेन, पूज्या दक्षिणतां बिना।।६८।।
अन्याश्च चण्डिका देव्या, वामिका मूर्तयः स्मृताः।
लक्ष्म्याद्या वामिकाः प्रोक्ता, मूर्तयो बगलादयः।।६९।।
महा-लक्ष्मी पूजनीया, वाम-भावेन सर्वदा।
वाग्भवी च सरस्वत्या, वामिका मूर्तिरीरिता।।७०।।
तारिणी दक्षिणा-काली, सुन्दरी भैरवी तथा।
सदा वाम-क्रमाचारैः , सिध्यन्ति नात्र संशयः।।७१।।

- इस **कलि-काल** में **शिव** के वाम-नायक **महा-भैरव** हैं। इनकी पूजा मद्यादि से **वाम-भाव** से करनी चाहिए।।६१।।
- **चण्डेश्वर, शूलपाणि, वटुक** आदि भी इनके ऐसे ही रूप हैं।।६२।।
- **विष्णु** के **वाम-भाव** के रूपों में **नृसिंह, राम, कृष्ण** और **गोपाल** हैं।।६३।।
- **सूर्य** का **मार्तण्ड-भैरव** का रूप और **गणेश** के **वेताल** तथा **उच्छिष्ट** के रूप **वाम-भाव** से पूज्य हैं।।६४।।
- **इन्द्र** आदि दिग्पालों एवं **भौम, शुक्र, बुध** और **सौरि** आदि ग्रहों की पूजा **वामाचार** से होनी चाहिए।।६५।।
- **असिताङ्ग** आदि **आठों भैरव** और **ब्राह्मी** आदि माताओं, **श्मशान-भैरवी, काली, उग्र-तारा, पञ्चमी, त्रिपुरा, भैरवी, तारा, त्रिपुर-सुन्दरी, उन्मुखी, दुर्गा, महिष-मर्दिनी** आदि की पूजा एक-मात्र **वामाचार** से करनी चाहिए।।६६-६७।।
- **चण्डिका, लक्ष्मी** आदि एवं **बगला** आदि, **महा-लक्ष्मी, वाग्भवी, सरस्वती, तारिणी, दक्षिणा काली, सुन्दरी, भैरवी** आदि की पूजा सदा **वामाचार** से करनी चाहिए।।६८-७१।।

बिना वामे न सिद्धाः स्यान्मातङ्गी छिन्न-मस्तिका।।७२।।
वाम-प्रधाना ये मन्त्रास्ते वै चन्द्राश्रिता मताः।
आगमोक्त-विधानेन, सिद्धाश्चन्द्राश्रितास्तु वै।।७३।।
यो भावो यस्य वै प्रोक्तस्तद्-भावं यदि नाश्रयेत्।
विरुद्ध-भावमाश्रित्य, भ्रष्टो भवति साधकः।।७४ ।।

अति-गुह्येन कर्तव्यो, कुलार्चनं कुलीनकैः।
गोपनाद् धर्म-रक्षा स्यात्, व्यक्त-धर्मो विनश्यति।।७५।।

- **मातङ्गी** और **छिन्न-मस्ता** की साधना बिना **वाम-भाव** के सिद्ध ही नहीं हो सकती।।७२।।
- जो मन्त्र **वाम-भाव**-प्रधान हैं, वे **चन्द्राश्रित** कहे गए हैं और **चन्द्राश्रित मन्त्रों** की साधना **आगम** के विधान के अनुसार करने से ही सिद्ध होती है।।७३।।
- जो भाव जिस देवता के लिए प्रयुक्त है, यदि उसका वह भाव न ग्रहण किया जाए और उसके विरुद्ध भाव का आश्रय लिया जाए, तो ऐसा करनेवाला साधक भ्रष्ट हो जाएगा।।७४।।
- साधकों को **कुलार्चन** अति गुप्त रूप से करना चाहिए। उसे गुप्त रूप से करने से **धर्म की रक्षा** होती है और प्रकट रूप से करने से **धर्म का नाश** होता है।।७५।।

मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैः, मुद्राभिर्मैथुनैरपि।
स्त्रिया सार्द्धं सदा साधुरर्चयेज्जगदम्बिकाम्।।७६।।
सुरा शक्तिः शिवो मांसं, तद्-भोक्ता भैरवः स्वयम्।
तयोरैक्यं समुत्पन्नमानन्दो मोक्ष उच्यते।।७७।।
आनन्दो ब्रह्मणो रूपं, तच्च देहे व्यवस्थितम्।
तस्याभि-व्यञ्जकं मद्यं, योगिभिस्तेन पीयते।। ७८।।
मन्त्र - संस्कार - संशुद्धामृत - पानेन पार्वति!।
जायते देवता-भावो, भव-बन्ध - विमोचकः।।७९।।
तृप्त्यर्थं सर्व-देवानां, ब्रह्म - ज्ञानार्थमेव च।
सेवेत मद्य-मांसानि, तृष्णया चेत् स पातकी।।८०।।
मन्त्रार्थ-स्फुरणार्थाय, मानसः स्थैर्य-हेतवे।
भव-पाश- निवृत्त्यर्थं, मधु-पानं समाचरेत्।।८१।।

- साधु पुरुष स्त्री के साथ **जगदम्बिका का अर्चन** मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन के द्वारा सदा करे।।७६।।
- मद्य **शक्ति** है, मांस **शिव** है, इनका भोक्ता स्वयं **भैरव** है। इन दोनों के ऐक्य से जो **आनन्द** उत्पन्न होता है, उसी को **मोक्ष** कहते हैं।।७७।।

- **आनन्द ब्रह्म-रूप** है। वह देह में विद्यमान रहता है। उसका अभिव्यञ्जक मद्य है, अतएव योगियों को उसका पान करना चाहिए।।७८।।
- हे पार्वति! मन्त्रों के संस्कार से भले प्रकार **शुद्ध अमृत रूप** मद्य के पान से **देव-भाव** उत्पन्न होता है, जो इस संसार के बन्धन से साधक को मुक्त करता है।।७९।।
- सब **देवताओं की तृप्ति** और **ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति** के लिए मद्य, मांस आदि का सेवन करे। जो इनका **तृष्णा** से सेवन करेगा, वह पापी होगा।।८०।।
- **मन्त्र के अर्थ के स्फुरण** के लिए, **मन की स्थिरता** के हेतु, **संसार के बन्धन से निवृत्त** होने के लिए मद्य-पान अवश्य करे।

मत्स्य-मांस-सुरादीनां, पदार्थानां विशेषतः।
पूजा-कालं विनाऽन्यत्र, न मया परि-कीर्तितः।।८२।।
पञ्च-ब्रह्म-ऋचा पञ्च-द्रव्याणां परि-शोधनम्।
अज्ञात्वा यश्चरेत् कर्म, स महा-पातकी भवेत्।।८३।।
अभिषेक-विहीनैश्च, प्रपञ्च-व्रत-धारिभिः।
पशुभिः सह धर्मैस्तैर्न, कुर्यात् पान-भोजनम्।।८४।।

- **पूजा-काल** को छोड़कर मैंने विशेष कर मद्य, मांस, मत्स्य आदि पदार्थ को और किसी अवसर के लिए विहित नहीं ठहराया है।।८२।।
- पाँचों **ब्रह्म-ऋचाएँ** और पाँचों द्रव्यों की **शोधन-विधि** बिना जाने हुए जो कोई **'चक्रार्चन'** के नाम से इन प्रदार्थों का उपभोग करता है, वह महा-पापी होता है।।८३।।
- **अभिषेक**-हीन, **व्रतादि** का प्रपञ्च करनेवाले पशुओं के साथ उनके धर्मानुसार पान-भोजन कभो नहीं करना चाहिए।।८४।।

अयष्ट्वा भैरवं देवं, न कृत्वा मन्त्र - तर्पणम्।
पशु-पान-विधौ पीत्वा, वीरोऽपि नरकं व्रजेत्।।८५।।
कौल-ज्ञाने ह्यसिद्धो यस्तद् द्रव्यं भोक्तुमिच्छति।
स महा-पातकी ज्ञेयः, सर्व-धर्म-बहिष्कृतः।।८६।।
मद्यासक्तो न पूजार्थी, मांसाशी स्त्री - निषेवकः।
कौलोपदेश - हीनो यः, सोऽक्षयं नरकं व्रजेत्।।८७।।

स्वेच्छया रममाणो यो, दीक्षा-संस्कार - वर्जितः।
न तस्य सद्-गतिः क्वापि, तपस्तीर्थ- व्रतादिभिः।।८८।।
असंस्कृतं पिबेद् द्रव्यं, बलात् - कारेण मैथुनम्।
स्व - प्रियेण हतं मांसं, रौरवं नरकं व्रजेत्।।८९।।

- **भैरव** का पूजन और **मन्त्र-तर्पण** किए बिना जो **पशु-पान** की विधि से मद्य का पान करता है, वह **वीर साधक** भी नरक-गामी होता है।।८५।।
- जो व्यक्ति **कौल-ज्ञान** से रहित है और **कौलों** के लिए निर्दिष्ट पदार्थों के उपभोग की इच्छा करता है, उसे महा-पापी समझना और धार्मिक कर्मों से दूर रखना चाहिए।।८६।।
- जो व्यक्ति **पूजा** करने की इच्छा नहीं करता है, किन्तु मद्य-पान, मांस-भक्षण और स्त्री-भोग में आसक्त है, ऐसा **कौल-दीक्षा** से रहित व्यक्ति अक्षय नरक को गमन करता है।।८७।।
- जो **अदीक्षित** व्यक्ति मनमाने ढङ्ग से मद्यादि के भोगों में लिप्त है, वह लाख तप, तीर्थयात्रा, व्रतादि करने से भी सद्गति को नहीं प्राप्त होगा।।८८।।
- जो व्यक्ति **असंस्कृत मद्य** का पान करता है, बल-पूर्वक स्त्री-सम्भोग करता है और **अपनी तृप्ति के लिए पशु-वध** करता है, वह रौरव नाम के नरक को प्राप्त होता है।।८९।।

अनिवेद्य तु यः शक्त्यै, कुल-द्रव्यं निषेवते।
पूजितं निष्फलं तस्य, देवता न प्रसीदति।।९०।।
मातृ-रूपां परित्यज्य, स्त्री-रूपां शक्तिमाचरेत्।
स याति नरकं घोरं, जन्म कोटि- शतानि च।।९१।।
मन्त्र-माता च पुत्री च, भगिनी च कुलाङ्गना।
न रमेत् कौलिको नित्यमेताः सम्यक् समर्चयेत्।।९२।।

- जो साधक बिना **शक्ति** को अर्पित किए हुए **कुल-द्रव्यों** का उपभोग करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है और उस पर **देवता** भी नहीं प्रसन्न होते।।९०।।

◈ जो साधक **शक्ति** को **मातृ**-रूप में न ग्रहण कर **स्त्री**-रूप में ग्रहण करता है और तदनुसार उसके साथ व्यवहार करता है, वह सौ करोड़ जन्मों तक घोर नरक को प्राप्त होता है।।६१।।

मन्त्र देनेवाली माता, पुत्री, बहन और कुलाङ्गना के साथ **कौल साधक** कभी रमण न करे। इनकी तो उसे नित्य अच्छी तरह पूजा ही करनी चाहिए।।६२।।

पाठो होमश्चातिथीनां, सेवनं देव - पूजनम्।
पितृ-श्राद्धं कुलाचारं, तत्त्व-ज्ञानं सदाऽऽचरेत्।।९३।।
मातृन् पितृन् शिशुन् दाराः, स्वजनान् बान्धवानपि।
यः प्रव्रजति हित्वैतान्, स महा-पातकी भवेत्।।९४।।
गार्हस्थं प्रथमं धर्म्यं, सर्वेषां मनु-जन्मनाम्।।९५।।
त्वमाद्ये जगतां माता, पिता ब्रह्म परात्परम्।
युवयोः प्रीणनं यस्मात्, तस्मात् किं गृहिणां तपः।।९६।।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन, तवाग्रे सत्यमुच्यते।
भवाब्धि-तरणे सेतुः, कुल-धर्मो हि नापरः।।९७।।

◈ साधक को सदा **स्तव-पाठ, हवन, अतिथि-सेवा, देव-पूजा, पितृ-श्राद्ध, कुलाचार** और **तत्त्व-बोध** करना चाहिए।।६३।।

◈ **माता, पिता, पुत्रों, स्त्रियों, स्व-जनों** और **बान्धवों** आदि को छोड़कर जो साधु होकर घर छोड़कर चला जाता है, वह महा-पापी होता है।।६४।।

◈ **गृहस्थ-धर्म** सब मनुष्यों के लिए **पहला धर्म** है।।६५।।

◈ हे आद्ये! तू जगत् की **माता** है और **पर-ब्रह्म** उसके **पिता** हैं। जिस धर्म के द्वारा गृहस्थ तुम दोनों को सन्तुष्ट करते हैं, उसके आगे उनके लिए और कौन दूसरा तप हो सकता है?।।६६।।

◈ अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ—इस भव-सागर को पार करने के लिए एक **कौल-धर्म** ही सेतु है।।६७।।

***

उपयोगी पुस्तकें

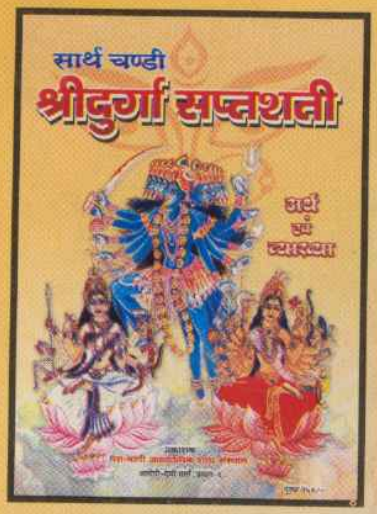

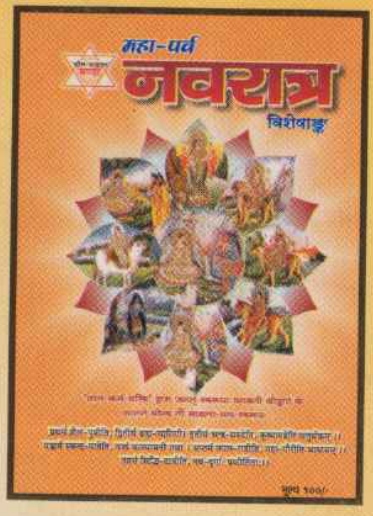

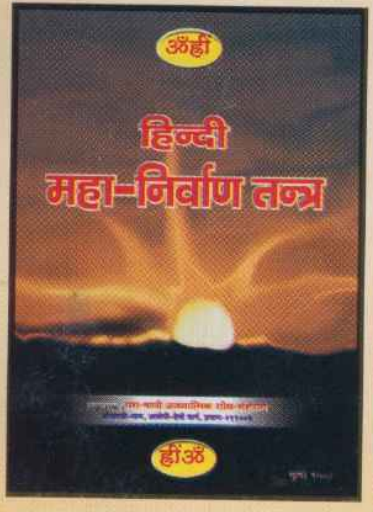

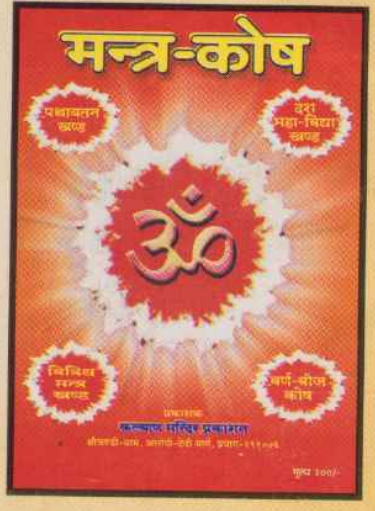

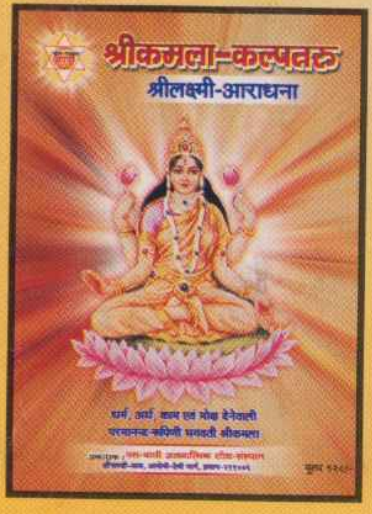

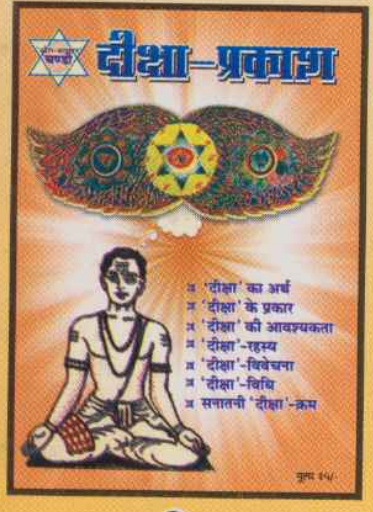

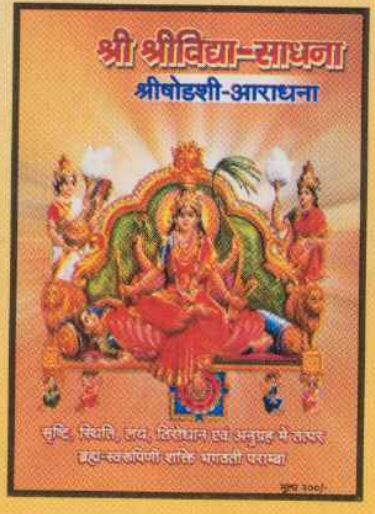

प्राप्ति-स्थान

पं० देवीदत्त शुक्ल शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-६